यश मालवीय

# उड़ान से पहले

# उड़ान से पहले

यश मालवीय

आशु प्रकाशन

२११ ००२

# उड़ान से पहले

(यश मालवीय)

ISBN 81-85377-44-8

**प्रकाशक**

आशु प्रकाशन

११४३/३१, पुराना कटरा

इलाहाबाद - २११ ००२

☐

**प्रथमावृत्ति :**

२००२

☐

**मूल्य :**

एक सौ तीस रुपये

☐

**आवरण :**

रंजन मिश्र

☐

**अक्षर संरचना**

दुर्गा कम्प्यूट्रॉनिक्स

७३५/१, जायसवाल मार्केट,

पुराना कटरा, इलाहाबाद

फोन : ४६१२३८

☐

**मुद्रक**

इण्डियन प्रेस (प्रा०) लिमिटेड

३६, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद

बबलू
(भाई वसु मालवीय)
की याद में
नहीं पता था कि यह
दूसरा गीत संग्रह
उसे
समर्पित करना होगा।

# उड़ान से पहले

# गीतक्रम

# भाई बिना तुम्हारे

दिखे नहीं पर फूल खिला हो जैसे सिरहाने
भाई बिना तुम्हारे कैसा लगता है जाने?

मूँछें बेतरतीब,
सलीका लेकिन जीवन में
बारिश बीच धूप होते थे
तुम ही सावन में
'अलबम' का हर चित्र तुम्हारा हमको पहचाने

जेठ-दुपहरी गुलमोहर थे
खुलकर खिलते थे
अपने को उड़ेल देते थे
जिससे मिलते थे
याद तुम्हारी, सूने घर में गाती है गाने

तुम थे बाँह कि बीच सफ़र में
कैसे टूटे हो?
आग हुआ सा सच तुम ही थे
तुम ही झूठे हो
तुम थे खुद ही जश्न कि खोए खुशियों के माने

छोटे भाई में तस्वीर तुम्हारी हिलती है
हैरत में शीशा है, शक्ल
हमारी मिलती है
चेहरे का हर भाव लगा है चोटें सहलाने

## बस्ती कुम्हारों की

फिर लगा फुटपाथ करवट सा बदलने
पीठ सी दिखने लगी चौड़े पठारों की

धुंध के ही बीच से सूरज दिखा
नींद ही में लिख उठा कुछ अनलिखा
टोलियाँ गा उठीं खुलकर कामगारों की

हाथ आए आग वाले सिलसिले
मोम से हो गए लोहे के किले
जीत जागी धूप वाले घुड़सवारों की

भोर आयी, रात से लड़कर नई
अभी लड़ने को पड़ी रातें कई
दिये फिर गढ़ने लगी बस्ती कुम्हारों की

# लोग सिर पर फास्फोरस हैं उगाये

तीलियों से जल रहे हैं बिन जलाये
लोग सिर पर फास्फोरस हैं उगाये

माचिसों से घर, घरों में फँसे चेहरे
ज़िंदगी में दूर तक हैं धँसे चेहरे
आग इनकी कौन आख़िरकर बुझाये

रोशनी के साथ बींधे जा रहे हैं
खाक होने तक खरीदे जा रहे हैं
घूमते चारों तरफ बस तमतमाये

हैं जुलूसों में, अकेले भी खड़े हैं
इस तरह पीछे मशालों के पड़े हैं
दर्द इनके सँग लपट सा गुनगुनाये

# भीड़ के हम आदमी हैं

भीड़ के हम आदमी हैं
दशमलव की पीठ के जीरो नहीं

हमें सोचो, हमें समझो
परख लो चाहे कभी
हम जिये ही नहीं होकर
आइनों से अजनबी
भीड़ के हम आदमी हैं
उगे हैं हम, इसी धरती पर यहीं

बंद कमरों में कभी भी
तुम हमें मत खोजना
हम नहीं वो, ज़िंदगी
जिनके लिये परियोजना
भीड़ के हम आदमी हैं
दूर अपने से नहीं होंगे कहीं

# चौराहों पर चाय पियें

चलो नीति की बातें छोड़ें
चौराहों पर चाय पियें

टेढ़ी सी है भौंह सदी की
तनी हुई प्रत्यञ्चा है
हैं दुधमुँहे उजाले
उन के हाथों मगर तमंचा है
रोज नयी चोटें लगती हैं
कब तक आखिर घाव सियें?

गले फाड़ते लाउडस्पीकर हैं
उत्सव का चेहरा है
भीतर का सन्नाटा फिर भी
जाने कितना गहरा है
मूल्य मर रहे हैं, अच्छा है
समझौतों के साथ जियें

# एक प्रतिसंसार सा

एक प्रतिसंसार सा गढ़ते रहे
हम कि अपने दर्द से लड़ते रहे
टूटकर भी जोड़ने का दम्भ भरते
हम कि लिखते रहे, जीते और मरते
सीढ़ियाँ टूटी हुई, चढ़ते रहे

लहर अपनी थी, कि अपने थे किनारे
हाथ आये अप्रिय संबोधन उधारे
बाढ़ के जल की तरह बढ़ते रहे
भाव भी निर्वस्त्र थे, थे धूप-गहने
हम कि थे संकोच का ही वसन पहने
सुबह की तस्वीर ही मढ़ते रहे

लक्ष्य सा देखा नहीं छत को कभी भी
मंज़िलें परिचित रहीं औ' अजनबी भी
आइनों की आँख में गड़ते रहे

# दूरी बहुत बेरहम होती है

सड़कों की हो, गलियों की हो या मन की
दूरी बहुत बेरहम होती है

जितना बढ़ो, फासले बढ़ते
हम कितना अनचाहा गढ़ते
सूरज नहीं उठा करता है
अक्सर ही खासा दिन चढ़ते
सड़कों की हो, गलियों की हो या मन की
पीड़ा मुश्किल से कम होती है

सोते हैं दालान-बरोठे
मौन रहें कोटे-परकोटे
परिक्रमा यह कैसी आखिर
कोई खुद को कितना गोठे?
सडकों की हो, गलियों की हो या मन की
ऑख हमेशा ही नम होती है

## तृप्ति के बादल भिगोते हैं

स्वाद से भी भूख जगती है
क्या कहें रोटी कि ठगती है
कौर मुँह में अर्थ पाता है
दृश्य धुँधला जगमगाता है
पेट में ज्यों आग लगती है

पर्व-तिथियाँ चाहती हैं ऋण
थालियाँ भी थाहती हैं दिन
जीभ लेकिन होंठ रँगती है

बहुत मीठे शब्द होते हैं
तृप्ति के बादल भिगोते हैं
चाशनी में उम्र पगती है

किरन-फिर-फिर झिलमिलाती है
रात काली तिलमिलाती है
सूर्य की तस्वीर टँगती है

## डामर पक रहा है

खदबदाता हुआ डामर पक रहा है
छटपटाती हुई सड़कें बन रही हैं
राह, जिस पर सिर्फ़ दुर्घटना लिखी है
ज़िंदगी ही खून से लतपथ दिखी है
उँगलियाँ अपने लहू में सन रही हैं

कौन है, जो कौर मुँह के छीन लेता
और हमको ही हमीं से बीन लेता
मुठ्ठियाँ कस-कस रही हैं, तन रही हैं

रोड रोलर गिने चक्कदार साँसें
पी रहे हम आग, गाढ़ा धुआँ खाँसें
पूड़ियाँ उनके घरों में छन रही हैं

ये कि अपने ही लिए रस्ते बनाते
दुह रहे जनतंत्र को, जी भर भुनाते
जातियाँ तो गाय वाला थन रही हैं

## छुवन अगहनी

अँगुली-अँगुली छुवन अगहनी
कुहरे पर गोटा किरनों का
शीत-चिरैया बैना बोहनी

केना सजा, सजा है आँगन
ऐपन पर सिंदूरी थिरकन
मलिन धूप का उबटन तन पर
मुस्काती है उषा दुलहिनी

कढ़े हुए रूमाल सरीखा
अभी-अभी सूरज था दीखा
नीम शाल ओढ़े बादल का
दाँत बजाती टहनी-टहनी

धुआँ-धुआँ केतली साँस की
चाय सखी हो गयी प्यास की
मेरे उन अधरों ने छोड़ी
सिरहाने ही सबद-रमैनी

# फूल गहरी साँस भरते हैं

जहाँ कविता की तनिक सम्भावना है
हम वहीं से बात करते हैं
गन्ध के संसार को ही जी रहे हैं
फूल गहरी साँस भरते हैं

तोड़ने को हैं उतारू आजकल
जिंदगी के छंद को भी जो
तरस खाने के सिवा उन पर, करें क्या
सह रहे सम्बन्ध को भी जो
हम कि अँजुरी में सँजोकर प्रार्थनाएँ
रात-दिन केवल बिखरते हैं

स्वयं के अस्तित्व का संघर्ष है
मुब्तिला हैं लोग अपने में
किस कदर तनहाइयाँ हैं सोच में
देखते हैं भीड़ सपने में
हम नहीं मुहताज कल की रोशनी के
धूप में अपनी निखरते हैं

## धूप के झरने बहे हैं

खिड़कियों से
धूप के झरने बहे हैं
नींद से उढ़के किवाड़े
जग रहे हैं

साँस लेती घास भी तो
जग रही है
ओस को भी, ठंड जैसे
लग रही है
याद ने फिर
गन्ध के बादल तहे हैं

काठ की तलवार जैसा
तिमिर टूटा
यह सवेरा, रोज़ होकर भी
अनूठा
हर तरफ से फूटते
सौ कहकहे हैं

## रामशलाका देख रहे हैं

कुहरे वाली धूप सुबह की,
वर्तमान को सेंक रहे हैं
पता नहीं है कल का जिनको
रामशलाका देख रहे हैं

सर्वशक्तिमानों की गाथा
और समर्थों की लाचारी
पहुँच चाँद पर जान गयी है
आधे सच को दुनिया सारी
दुनियादार, छोड़कर दुनियादारी
लाठी टेक रहे हैं

यादें हुई गले की फाँसी
लोग शान से झूल गए हैं
पैदा होकर पले-बढ़े फिर
अपने को ही भूल गए हैं
अपनी बस्ती लगे अचीन्ही
उड़ती नज़रें फेंक रहे हैं

# इस किले से उस किले तक

उड़ रही है धूल, टापें गूँजती हैं
इस किले से उस किले तक

जीत अश्वारोहियों की
अश्व, ही हारे-थके हैं
वक्ष पर तमगे सजे हैं
पीठ के फोड़े पके हैं
दह रहे हैं लोग
लपटें ऊँघती हैं
आदमी से काफ़िले तक

दिग्विजय के स्वप्न
आँखों में सँजोये चल रहे हैं
काटने की क्या कहें
बस बीज बोए चल रहे हैं
हम कि जैसे
ढीठ यादें जागती हैं
साँस के हर सिलसिले तक

## बदले हैं कैलेण्डर

रक्तपात जितना बाहर है
उतना मन के भीतर
नया साल आया तो केवल
बदले हैं कैलेण्डर

नयी-नयी तारीखें आतीं
नया न लगता कुछ भी
अपनी सूरत भी शीशों में
लगती बिसरी-बिसरी
बाहर टूटे पर्वत,
भीतर भी ढहता है पत्थर

एक युद्ध चल रहा रात-दिन
अनबन है अपने से
आँखें तो मुठभेड़ कर रहीं
फिर भी हर सपने से
धुँधले हुए वर्णमाला के
बहुत जरूरी अक्षर

## कुएँ हमारे गाँव के

बँटवारे हो रहे
धूप में छाँव के
प्यास जी रहे
कुएँ हमारे गाँव के

खेतों की दरकी आँखों में
बादल छीज रहे
देह पसीने में भीजी है
सपने भीज रहे
शीशे के भ्रम हैं
पत्थर की नाव के

असमय भरा झुर्रियों
चेहरा पनघट का
पत्ता-पत्ता पीला है
अक्षयवट का
अभी हरे हैं चर्चे
पिछ्ले घाव के

## यह कभी भी नहीं होगा

आलसी रातें कभी भी
जूझ पातीं नहीं दिन से
यह कभी भी नहीं होगा
कुआँ खोदो 'आलपिन' से

टूटती वर्तनी जिनकी
शब्द वो भी साथ रहते
दूर तक लम्बे सफ़र में
विदा वाले हाथ रहते
क्या पता बरसें, न बरसें
जो दिखें बादल उऋण से

हर फ़तह की कोख से ही
हार के रिश्ते जनम लें
गर्भगृह में मन्दिरों के
दैत्य हैं, किसकी कसम लें
पास रहते वो हमेशा
दूर हैं दूरियाँ जिनसे

## बाल काले कर रही है सभ्यता

बाल काले कर रही है सभ्यता
अंग का कसना नहीं मुमकिन
दुःख रही है पीठ पर्वों की वहुत
खो गए हैं भीड़ में शुभदिन

लड़खड़ाते पाँव संस्कृति के नशे में
रोशनी है पिस रही कुहराम में
जम रही है बर्फ़ हर सम्बन्ध में ज्यों
मूल्य सारे ठिठुरते हैं घाम में
आइना सच को हमेशा सच कहे
वृद्ध को कैसे कहें कमसिन

स्वप्न भी बंदूक ताने से खड़े हैं
बाँसुरी की टेर गूँगी हो गयी
सो गए हैं अग्निधर्मा राग के क्षण
हर कदम पर बस मुसीबत है नयी
चेतना से शून्य लगती हर दिशा
लोग हाथों में चुभोते पिन

# एक अंधी आस्था की धार में

क्या कहें विज्ञान का वरदान भी
फोन पर ज्योतिष बघारा जा रहा है
एक अंधी आस्था की धार में
नाव को फिर-फिर उतारा जा रहा है

भाग्यफल की, राशिफल की धुंध है
धूप की शमशीर ही खुद कुंद है
दृष्टि को ही मानकर अश्लीलता
देह को अपनी उघारा जा रहा है
आँधियों का अनवरत अध्याय है
माथ का चंदन स्वयं व्यवसाय है
बात है जीवेत शरदः शतं की
और हर पल हमें मारा जा रहा है

दिन सगे हैं क्रूर काली रात के
सुए पीले पड़ गए फुटपाथ के
एक तट पर भीड़ बहरों की जुड़ी है
दूसरे तट से पुकारा जा रहा है

## यह गृहस्थी

फूल की थाली दुखों में बेच दी
सुख समझकर काँच के प्याले खरीदे

यह गृहस्थी इस तरह से भी खुशी दे
मालकिन घर की थकी औरत
टेंट में बाँधे हुए है रेज़ग़ारी
चूसती है खून जोंकों सा
ज़िंदगी जैसे व्यवस्था आबकारी
दर्द धारावाहिकों सा चल रहा है
तोहफों में हर घड़ी बस खुदकुशी दे
यह गृहस्थी इस तरह से भी खुशी दे

दाल आयी है अगर तो बन गयी
रोज सब्ज़ी हो, ज़रूरी तो नहीं
खलें खाली जेब वाले कहकहे
मत कहो तुम, यह फ़कीरी तो नहीं
साप्ताहिक हैं सुखों के नोट्स कुछ
प्यास ही मृगजल कि अक्सर मयकशी दे
यह गृहस्थी इस तरह से भी खुशी दे

# कट रहे हैं दुःख

कट रहे हैं दुःख
कि जैसे हंस कोई
काटता काई सरोवर की

कुनमुनाती किरन कच्ची भोर की
जग रही है लहर मीठे शोर की
बहुत अपनी लग रही है, झिलमिलाती
थरथराहट इन्द्रधुन की डोर की
सज रहे हैं सुख
सघन उम्मीद के क्षण
थक रही हैं आहटें डर की

क्या कहें मझधार की या कूल की
ओस हँसती नोंक पर फिर शूल की
गन्ध के बादल छुपाएँ क्यों भला
बात कोई घाटियों के फूल की
अर्थ देते तुक
कि लय-स्वर-ताल सब कुछ
याद खिलती खो गए घर की

# एक उजली धार

चीरकर जब साँवली सी फाँक पानी की
नाव कोई अगर बढ़ती है
एक उजली धार पीछे छोड़ती ही है

दृश्य धुँधलाते नहीं हैं
साफ़ होते हैं
बहुत से अपराध जैसे
माफ़ होते हैं
चीरकर जब साँवली सी आँख पानी की
किरन कोई शिखर चढ़ती है
वज्र से अभिमान तृणवत् तोड़ती ही है

धूप जगकर
टूटती सी नींद सोती है
देह में बालू लगी
उम्मीद होती है
चीरकर जब साँवली सी बाँक पानी की
लहर कोई गीत गढ़ती है
खुले पत्रों से किनारे मोड़ती ही है

# हम किसी शनिवार को

चलो अंधी आस्था ओढ़ें-बिछाएँ
हम किसी शनिवार को लोहा न लाएँ
बात ऊँची करें
नीची आँख करके
और अपने आप से ही
रहें डर के
छींक दे कोई अगर तो छटपटाएँ

दिशाशूलों से बिंधा सा
हर सफर हो
कभी बुध का,
कभी मंगल का कहर हो
पैर आगे बढ़ें, बढ़कर लड़खड़ाएँ

जियें जीवन दूसरों का
मौत अपनी
सच कई हों
पिता-भाई-बहन-पत्नी
शांति पाठो के लिये पंडित बुलाएँ

## छोड़ संसद की सड़क

फिक्र के सूरज उगाती सी
जिंदगी क्या खूब लगती है
टूटने को टूटती सौगन्ध है
आइनों पर कौन सा प्रतिबंध है
हर किरन है एक चिनगारी
और झुलसी दूब लगती है

पैर अपने, ढाँकता सा मोर है
भोर भी हो गयी आदमखोर है
क्या कहें भी, बहलने के नाम पर
हमें कितनी ऊब लगती है
हर कदम पर शोर है सुनसान का
प्रश्न कैसा, रेत में जलयान का
बात है मझधार की यूँ तो मगर
नाव तट पर डूब, लगती है

रात में भी धूप लगती है
एक ठंडी आग जगती है
छोड़ संसद की सड़क हमको
हर गली महबूब लगती है

# नदी तो केवल वही है

देखिए तो हर कदम पर किस तरह से
चोट पत्थर की सही है
तोड़कर चट्टान आगे बढ़ रही जो
नदी तो केवल वही है

रास्तों में कहीं घुट-बँधकर मरा जो
झील-पोखर हो गया इतना बहुत है
आइने जैसी लहर का साक्षी है
पा गया जो भी जहाँ जितना बहुत है
पर्वतों को काट बीचों-बीच छिन में
आँख से भी जो बही है
नदी तो केवल वही है

बात करती कंदराओं से, कुटी से
जंगलों के मौन को गुलजार करती
स्वयं की अँजुरी बढ़ाकर देख भी लो
किस तरह से प्यार को भी प्यार करती
दही मन में आग लेकर और अपनी
साँस भी जिसने तही है
नदी तो केवल वही है

# अँधियारे जंगल उग आये

अँधियारे जंगल उग आये
बढ़ते हैं पेड़ों के साये

देहरी-आँगन बत्ती-ढिबरी
घर-चौपाल रोशनी बिखरी
फिर भी तो चेहरे धुँधलाये

पास-पड़ोस सगे सम्बन्धी
कुछ रोजी बिन कुछ बहु धंधी
खुसफुस खाँसी दुखड़े गाए

कर्मयोग के रहे पुजारी
पानी पीटा मक्खी मारी
कैलेण्डर के दिन बिखराए

पीठ इकहरी दुगना बोझा
सुबह निवाला संझा रोज़ा
आले-अलमारी मुँह बाए

दाएँ-बाएँ ताका झाँकी
रही बड़बड़ा बूढ़ी काकी
राम नाम भी बिसरा जाए

# हलचले हैं आसमानों में

छटपटाहट है उड़ानों में
हलचले हैं आसमानों में

पंख में नत्थी ज़मीनें हैं
हम कि आँसू हैं, पसीने हैं
धूप भी हैं सायबानों में

टूटती सी सौ सलाखें हैं
सिर्फ़ सपने और आँखे हैं
ढल रहे हैं कारख़ानों में

गीत की आज़ाद बाँहे हैं
कब कभी खुलकर कराहे हैं?
हम नहीं बँधते घरानों में

है निभी गहराइयों से भी
जुड़ रहे ऊँचाइयों से भी
है समय की दास्तानों में

आज भी ज़िंदा बचे से हैं
शून्य में देखो रचे से हैं
हम जिएँ खेतों सिवानों में

## चलो यही कमरा

चलो यही कमरा कुछ नया-नया कर दें
गुलदस्ते को ताज़ा फूलों से भर दें

टेप की जगह बदलें सँग-सँग खुद गाएँ भी
जी न भरे अपने से और फिर अघाएँ भी
गीत जिएँ सूने से शब्दों को स्वर दें

तख़्त को करें बीचो बीच बुनें दोपहरी
ऐसा कुछ हो कि साफ़-साफ़ सुनें दोपहरी
होठों पर दिन के वाचाल मौन धर दें

सोफों की भी बदलें जगह, मनस्थिति बदलें
एक सा रहे क्यों परिवेश, सूर्य सा निकलें
उद्देश्यों के धड़ को उठा हुआ सर दें

मन के ही ताल सजें पल-छिन के सौ बगुले
लहर-लहर अपनी तो क्यों विचार हों गँदले
इसी ठेठ कमरे को शहर-गाँव-घर दें

रैक जो किताबों का उसको भी खिसकाएँ
रिश्तों में नहीं मगर कुछ हो दाएँ-बाएँ
पूरा 'मैं' दें तुमको स्वयं को अगर दें

# एक लड़की दही

कोख से कब्र तक सिलसिला है यही
एक लड़की दही, एक लड़की दही

वो न समझी कभी चाल शतरंज की
उस पे चलती रही है छुरी तंज़ की
वो दबायी गयी क्योंकि दब के रही

लोरियों ने छुआ ना हवा ने छुआ
देह घर के टहलती रही बद्दुआ
होंठ कह ही न पाए व्यथा अनकही

बाप रोका किया भाई टोका किया
खुद जनम दे के माँ ने पढ़ा मर्सिया
रेत में भुन गयी बाढ़ में है बही

जिस्म के दाम, ऊँचे से ऊँचे लगे
आँख मल-मल के सौ-सौ शिकारी जगे
वो उसक के स्वयं चादरों सी तही

भीड़ में खो गयी भीड़ में मिल गयी
साँस खुल के जो ली साँस ही छिल गयी
वो ही निकला कुटिल बाँह जिसने गही

# खून सने कपड़े ही

भीड़ न समझो, गुच्छों में हम हैं
खून सने कपड़े ही परचम हैं

दर्द जिंदगी का हर बोझा ढोता है
दिशाहीन कोई जुलूस, कब होता है?
हम अपनी ही ताकत हैं, श्रम हैं

कथा कहें सूरज की वंशावलियों की
हमको है पहचान, अँधेरी गलियों की
ओस लिखी सुबहों जैसे नम हैं

झूठे ब्रह्मा, मगर सृजन की शेखी है
जन्म कुंडली हमने सबकी देखी है
हम ही रचना हैं, रचना-क्रम हैं

हैं अखबार न पंख लगी अफ़वाहों के
परचे हैं, मंजिल से पहले राहों के
जीवन हैं, सुख-दुःख के कॉलम हैं

धुँधले शिलालेख भी हमने बाँचे हैं
वक्त पड़ा तो एक पैर पे नाचे हैं
कैसी दुविधा  हम किससे कम हैं

# पन्द्रह अगस्त अँधियारे में

बिजली कटी, घुटा मन घर-चौबारे में
बीत गया पन्द्रह अगस्त अँधियारे में

क्या कहिए जनतंत्र पसीने में डूबा
लाल किले वाले भाषण से जी ऊबा
चुभो गया ज्यों पिन कोई गुब्बारे में

सूखा हलक, रहा हर बादल अनबरसा
राष्ट्रगान भी पानी की ख़ातिर तरसा
गूँजा है अकाल, आँगन-गलियारे में

पलक झपी फिर भाव-बढ़ गए खादी के
सस्ते दामों बिके मूल्य आज़ादी के
चुहिया मरी मिली है ठाकुर-द्वारे में

नल की टोटी जीभ फिराती होठों पर
नंगी होकर प्यास नाचती वोटों पर
शस्त्र मिले, मन्दिर-मस्जिद-गुरुद्वारे में

शुभदिन खोये रेत हुए संकेतों में
फ़सलें नहीं, भूख लहराई खेतों में
उम्मीदें बहली हैं साँझ-सकारे में

# सूरज की साँवली सखी

ऊषा का क्या, चौका-बासन सँग जगती है
सूरज की साँवली सखी जैसी लगती है

दिखती है धूप के निकलने से पहले ही
हाथों में राख मगर स्वप्न हैं रुपहले ही
मलकिन के होठों गोली जैसी दगती है

गढ़ती अपना भविष्य पर मिटती जाती है
आँखों में अँधियारा बर्तन-चमकाती है
भोजन है जूठन का, खुद को ही ठगती है

साहब के बच्चे तो पढ़ने को जाते हैं
उसके बच्चे, उसका हाथ ही बँटाते हैं
दिन भर बस इस घर से उस घर को भगती है

हर हालत में जी भर खटती ही खटती है
आदमी पिये दारू अक्सर ही पिटती है
फीकी सी हँसी लिये फिर भी मन रँगती है

हारती, हराती सी भूख से झगड़ती है
वह रोटी क्या जाने तवा ही रगड़ती है
जितने घर उतना ही सूली पर टँगती है

# जिनका कोई चरित नहीं

बाहर युद्ध छिड़ा है गहरा लेकिन वो तो घर बैठे हैं
जिनका कोई चरित नहीं वो रामचरित लेकर बैठे हैं

झगड़े कोर्ट-कचहरी वाले गिनते हैं पैरों के छाले
भरी दुपहरी करें अँधेरा सूरज भी हैं मन के काले
मार कुण्डली सच्चाई पर बड़े-बड़े दफ्तर बैठे हैं

खून-ख़राबे की शंका है दिल्ली सोने की लंका है
ऐसे नाम ख़ास हैं जिनका बस्ती में बजता डंका है
ऊँचे सिंहासन, शब्दों के ज़ालिम जादूगर बैठे हैं

दुरभिसन्धियों के बादल हैं, श्वेत कबूतर फिर घायल हैं
दिखती नहीं भुखमरी उनको जो भाषण के ही कायल हैं
समझौतों के शान्ति पत्र पर जलते हस्ताक्षर बैठे हैं

अपने दष्कर्मों को भूले बस अतीत का झूला झूले
पिचके हुए मूल्य साँसों में फिर भी गुब्बारों से फूले
ऊँचे स्वर में गाएँ भी क्या बैठे गले कि स्वर बैठे हैं

नखरे हैं, नौकरशाही है केवल दमक रही स्याही है
दिन भर में कितने सौदे हैं साँसों की आवाजाही है
केबिन में हिंसक चेहरा ले पशुओं से अफसर बैठे हैं

# नयी हैं रूढ़ियाँ

हर नये दिन की नयी हैं रूढ़ियाँ
घिस रहा सूरज सुबह से एड़ियाँ
दोपहर आयी न आया डाकिया
क्या लिखें भी छोड़ दें क्या हाशिया
रोष में किरनें दिखाई दे रहीं
गूँजती हैं झनझनाती चुप्पियाँ

घूमता है झूठ मोटर-कार में
सच न मिलता धूप के अख़बार में
सोच को अब पंख लगते ही नहीं
पग धरो तो बोलती हैं बेड़ियाँ

शाम अक्सर शाम से पहले दिखे
रोशनी बाज़ार में सस्ती बिके
हाथ की ठंडी मशालें क्या करें
आग को बिसरा रही हैं पीढ़ियाँ

बर्फ़ केवल बर्फ़ है एहसास में
चित्र सारे दफ़्न हैं इतिहास में
सभ्यताओं के अधर काले पड़े
औ' फँसी हैं उँगलियों में बीड़ियाँ

## कुटिल मौसम के ठहाकों से

शहर हो या गाँव, जीवन है आंबनूसी बियाबानों में

दृष्टि जाती है जहाँ तक
एक काली नदी दिखती है
या कभी रोशनी खूँटे से
गाय जैसी बँधी दिखती है
भय सघन बरगद हुआ जाता
बिल्लियाँ रोती मकानों में

पिये जाते हैं अँधेरा ही,
खुले रोशनदान या खिड़की
बोलते पल्ले किवाड़ों के
झेलते हैं हवा की झिड़की
कुटिल मौसम के ठहाकों से
गूँज भर जाती सिवानों में

घूमता नरभक्षियों का दल
दाँत रह-रहकर चमक जाते
हम स्वयं को ही बचाने में
टूट जाते, बहुत थक जाते
क्षण हवा में किस तरह पकड़ें हम नहीं शामिल उड़ानों में

# घर तलाशने लगता है मन

घर तलाशने लगता है मन
ज्यों ही घर से बाहर निकलो
उग आते दालान-बरोठे
भाग रहे से चौराहों पर
कच्चे-पक्के, गीत-घरौंदे
कान न देते अफवाहों पर
चित्र वही सजते आँखों में
कितना भी तस्वीरें बदलो

भीतर जगते हुए मौन का
क्या बिगाड़ पाएँ हो-हल्ले
साँसों में ही खुल जाते हैं
रह-रहकर खिड़की के पल्ले
आँसू अपना काम दिखाते
सँभलो, आख़िर कैसे सँभलो?

राजमार्ग के आगे चलते
हैं अपने आँगन-गलियारे
काली रातों में नहलाते
उजली यादों के उजियारे
वश न चले अपने पर लेकिन
जी करता अपने से मचलो

# बिल्लियाँ ही बिल्लियाँ हैं

बिल्लियाँ ही बिल्लियाँ हैं
कौन बाँधे घंटियाँ इनके गले में
लोग चूहों से डरे
सिमटे हुए हैं
आग के भी हो गए
चेहरे धुएँ हैं
फब्तियाँ ही फब्तियाँ हैं
है न मरहम, बस नमक ही है जले में

बिल्लियों के लिये
साँपों के लिये है
दूध मुश्किल से
कोई बच्चा पिये है
कश्तियाँ ही कश्तियाँ हैं
हर तरफ़ तूफ़ान दिखता हौसले में

डालियों से टूटकर
पत्ते पड़े हैं
जो हरे हैं, इन्हीं पत्तों पर
खड़े हैं
खिड़कियाँ ही खिड़कियाँ हैं
क्रूर सुविधा और सत्ता के किले में

# हर शाम विदा होता है कुछ

हर शाम विदा होता है, कुछ
मन के भीतर के कोने से

पीले पत्तों से कागज़ हैं
छूने से टूटे जाते हैं
यादों के हाथ, समय वाली
उँगली से छूटे जाते हैं
कितना कुछ खोना पड़ता है
बस एक पहर के खोने से

धुलती है पिछली धूल नहीं
कुछ और नयी जम जाती है
कोई तिथि, क्षण भर आँखों में
जाते-जाते थम जाती है
फिर कुछ भी आता हाथ नहीं
अँजुरी भर आँसू रोने से

कैलेण्डर बदले जाते हैं
तस्वीरें बदली जाती हैं
बढ़ती ही जाती है काई
आकृतियाँ फिसली जाती हैं
गोलियाँ नींद की खाकर भी
सपने डरते है सोने से

# आग को आकार दो

नहीं मिट्टी को
कि तुम अब आग को आकार दो
एक चिनगारी लपट बनकर उठे
तुम गढ़ो कुछ शब्द ऐसे आग के
चाक पर घूमे समूची सृष्टि ही
लौट आएँ पर्व फिर अनुराग के
जग हँसाई बंद हो
जग को नया आधार दो

पको आँवे में धुएँ को काटकर
तुम कुम्हारों के सृजन का गीत हो
तुम पराजित हो नहीं सकते कभी
अग्निधर्मा हो, धरा की जीत हो
खो गया जो आँख से
उस स्वप्न को संसार दो

हवा को भी नींव देनी है तुम्हें
जो फ़िजा में गंध के किस्से लिखे
भोर की लाली तुम्हारा सत्य हो
हर अंधेरा रोशनी का फल चखे
है चुनौती बना, जो
मौसम उसे आभार दो

## टिमटिमाता शुक्रतारा

जग रहा है याद के आकाश में
टिमटिमाता शुक्रतारा
एक नीली रोशनी
फैली हुई है
पारदर्शी दृष्टि,
कब मैली हुई है?
हो न सकता कभी
सम्बोधन उधारा

भाव की आकाश गंगा
बोलती है
एक चिड़िया, पंख अपने
तोलती है
पास आता जा रहा है
हर किनारा

धूप ने काजल अभी
पारा नहीं है
कौन कहता है
कि उजियारा नहीं है
जानते हैं हम
कि कब किसने पुकारा

# पुस्तक से बाहर तो आओ

अच्छी चाय कहीं फुर्सत से
चलकर पीते हैं
चीविंगम चुभलाते मुँह का
टेढ़ा-मेढ़ा होना
दो पल हमको भी देदो ना
इतने व्यस्त बनो ना
वह लमहे जो साथ जिये हैं
अच्छे बीते हैं

शाम हो गयी तलब लगी है
सिर भी लगा पिराने
चोरी चुपके से बतियाने
आया किसी बहाने
घंटे भर से धरे मेज पर
प्याले रीते हैं

पुस्तक से बाहर तो आओ
मौसम भी अच्छा है
कुछ अधीर सा गुलदस्ते में
फूलों का गुच्छा है
दिन बीतें जो बिना तुम्हारे
लगते तीते हैं

## सच बिजूखे सा

सच बिजूखे सा
पता चल गया पशुओं को
खेत का बचना कठिन है
बाढ़ का पानी
बढ़ा है कर्ज़ जैसा
नाक तक डूबा हुआ दिन है

भूख केवल भूख है चारों तरफ़
पढ़ रहे सब खून में डूबे हरफ़
जल रही हैं बस्तियाँ, खलिहान सारे
गिर रही थी कल जहाँ उजली बरफ़
हैं विरल संवेदनाएँ
धूप नीली
दर्द की भाषा गझिन है

तलहटी का शोर है जैसे हवा
साँस में पिस कब हुआ शीशा रवा
चुभ रहे हैं ख़्याल में ही पिन ख़लिश के
है नहीं इस मर्ज़ की कोई दवा
हर फ़सल औंधी पड़ी
सरपंच के घर
उम्र कब खुद से उऋण है

# रामलुभाया

रामलुभाया, राम लुभाया
जो जी में आया वो गया
सीखा नहीं राग दरबारी
भले नौकरी थी सरकारी
समझा नहीं ज़िंदगी को बस
दाल-भात, रोटी-तरकारी
धधक उठी जो आग पेट की
रूखा-सूखा कुछ भी खाया

मस्ती की अपने पैसे की
गुज़र-बसर जैसे तैसे की
करी पैलगी नहीं कभी भी
काले धन वाले भैंसे की
आगे बढ़ने की इच्छा थी
लेकिन हुए नहीं चौपाया

मिली बहुत नंगी आज़ादी
जिसको हमने नहीं हवा दी
उनसे बचे जिन्होंने पहनी
खास-खास मौकों पर खादी
आजादी के जन्म दिवस पर
फटा हुआ झण्डा लहराया

# हत्यारों ने जात पूछकर

हत्यारों ने जात पूछकर गोली मारी
हत्यारों ने धर्म पूछकर गोली मारी

जाल बिछाने को आँखों में जाला सा है
धुआँ उठा संसद का गुम्बद काला सा है
जाने कैसी हवा बह रही है हत्यारी
वक्त नहीं है अब, कुछ भी पढ़ने-गुनने का
है रिवाज बस गहरा सन्नाटा सुनने का
मुआवजों में गिरते हैं आँसू सरकारी

सहमे-सहमे हैं सारे दालान-बरोठे
हैं आबाद सियासत वाले ऊँचे कोठे
मूल्य बिक रहे हैं जैसे भाजी-तरकारी
कोटों-परकोटों की छोडो बैठे-ठाले
गलियों में गालियाँ घूमती आँख निकाले
दूध छीनती बच्चों का तलवार दुधारी

लड़वाती भाषा की नेकी और भलाई
खाती कभी, निगल जाती है गहरी खाई
हौले-हल्के उठें पाँव सत्ता के भारी
पता नहीं यह नंगी दहशत कौन परोसे
राम भरोसे कुछ है, कुछ है भीड़ भरोसे
काठ हुए चेहरे हैं शीशे आरी-आरी

# अनमनापन ओढ़कर

अनमनापन ओढ़कर बैठे हुए हैं
हम बहुत कुछ छोड़कर बैठे हुए हैं

याद की बारादरी है
आँसुओं में
कौन झाँके, अर्थ के
अंधे कुँओं में
रोशनी के तीर खुद ज़ख्मी हुए हैं
शब्द आँखें फोड़कर बैठे हुए हैं

हर कहीं दहलीज पर
भूखी हवा है
मर्ज कुछ है और कुछ
उसकी दवा है
टूटकर 'छन' से गिरे हैं आइने सब
हम दिनों को जोड़कर बैठे हुए हैं

बादलों से सूर्य भी
गीले हुए हैं
बहुत ऊँचे, टीस के
टीले हुए हैं
पाठ हैं इतिहास की गहराइयों के
हम कि पन्ने मोड़कर बैठे हुए हैं

# कैसे होंगे घर के दिन?

सोच रहा परदेसी कैसे होंगे घर के दिन?
आँगन में तुलसी का बिररवा झूम रहा होगा
घुटनों पर घर भर में बेटा घूम रहा होगा
लेकिन नींद न आयी होगी उसको मेरे बिन

कंघे में सिंदूर लगाकर माँग भरी होगी
दर्पण के आगे जाते ही आँख भरी होगी
पोंछ लिये होंगे पल्लू से आँसू के पल-छिन

घर आयी बहना भी बिटिया सुला रही होगी
'आ-मामा आ-मामा' कहकर बुला रही होगी
सरक रही हैं बोझिल घड़ियाँ छवियों को गिन-गिन

भाभी ने दुलार के मेरे कितने नाम धरे
उसकी मीठी छेड़छाड़ अब यादों में अखरे
अब भी भइया से सौ नखरे जैसे हो 'कमसिन'

भूल-भूल कर माँ हमको ही टेर रही होगी
अनमन सी बैठी बस माला फेर रही होगी
भूखी रही स्वयं औ' हमको दिया दूध का ऋण

बाबू ने मुश्किल से मुँह में कौर धरा होगा
भरा-भरा घर होगा मन भी भरा-भरा होगा
कई घरेलू बातें मन में चुभो रही हैं पिन

# हम तो दर्शक-दीर्घा में हैं

हम तो दर्शक-दीर्घा में हैं मंचों की, अभिनेता जानें
रोज नयी चोटें खिलती हैं दृश्य पुराने खो जाते हैं
हँसते हुए विदूषक चेहरे मन ही मन में रो जाते हैं
हम तो दर्शक दीर्घा में हैं सबको ही अपना सा मानें

क्रूर समय है खल नायक सा ज़ोर-ज़बरदस्ती है पेशा
यादें हैं नायिका कि जिनकी अस्मत लुटती रही हमेशा
हम तो दर्शक दीर्घा में हैं अक्सर सिर से चादर तानें

है चरित्र ही पास न जिनके वो माहिर चरित्र अभिनेता
ढूँढ़े मिले न कोई इनका जो आदर से नाम न लेता
हम तो दर्शक दीर्घा में हैं सबके ही आँसू पहचानें

हर मंजर नेपथ्य भरोसे कोई बात नहीं चौंकाती
चमक दमक है सत्य तुम्हारा हमें भीड़ की भाषा आती
हम तो दर्शक दीर्घा में हैं कितने युद्ध रोज ही ठानें

अक्सर सूर्यग्रहण दहशत के हमने नंगी आँखों देखे
जो आश्चर्य तुम्हें देता है, है सामान्य हमारे लेखे
हम तो दर्शक दीर्घा में हैं नहीं थूक से सतुवा सानें

सारे पुण्य आग में अपनी बुरी तरह धू-धू जलते हैं
ऊँचे दिखें पाप के पर्वत जंगल पापों के फलते हैं
हम तो दर्शक दीर्घा मे हैं सच को पटाक्षेप से छानें

## डायरी भी आइना है

डायरी भी आइना है पढ़ सको तो
बिम्ब में ही
साफ़ बीते दिन झलकते
स्वयं बच्चों से
कभी रोते-किलकते
डायरी भी सीढ़ियाँ हैं चढ़ सको तो

धूप भी इनमें
कि पानी भी, हवा भी
दर्द ग़ालिब का
कि ग़ालिब की दवा भी
डायरी भी फ्रेम है कुछ मढ़ सको तो

मोड़ से हैं पेज
चौराहे सँजोए
भाव भी हैं
दूध के धोये-बिलोये
डायरी भी पाँव है यदि बढ़ सको तो

फूल-काँटे एक सँग ही
बिछे दीखें
आँख में पसरे हुए से
मौन चीखें
डायरी खुद गीत है कुछ गढ़ सको तो

# अच्छा है उनसे मुँह मोड़ो

जिनका मुँह न देखना भाए
उनके संग पालथी जोड़ो
अच्छा है उनसे मुँह मोड़ो

जो जी आए सुना रहे हैं
मर्जी का गा-बजा रहे हैं
पर्वत जैसी प्यास लिये हैं
सपनों में ही अघा रहे हैं
बंजर है जमीन जब मन की
काहे आखिर जोतो-गोड़ो?

ये हैं कई महकमों वाले
कसमों और करिश्मों वाले
तिरछी चालों, चकमों वाले
बिना आँख के, चश्मों वाले
अच्छा नहीं कि इनसे जुड़कर
लम्बी-गहरी साँसे छोड़ो

कैसी यात्राएँ हरदम हैं
कई किलोमीटर के भ्रम हैं
सफल विदूषक वही कि जिसकी
बात-बात पर आँखें नम हैं
यह कैसी गुदगुदी कि केवल
आँसू की ही बूँदें तोड़ो

## लोकतंत्र ठिठुरा है

सिमटा है, बटुरा है लोकतंत्र ठिठुरा है
खाँचे हैं, खोखे हैं बड़े-बड़े धोखे हैं
वर्तमान साधे क्या बहुत गया गुज़रा है

संसद बाजारू है
सिर्फ दवा-दारू है
कीर्तन-कव्वाली है भाड़े पे मुजरा है

धूल भरी आँधी है
अब काली चाँदी है
गरिमा है गाली की तिल्ला है, नखरा है

रोती मेहरारू है
हँसता कंगारू है
सूक्ति का, सुभाषित का चेहरा ज्यों उतरा है

चढ़ा हुआ पानी है
जलती पेशानी है
ढीला पैजामा है कसा हुआ फ़िकरा है

भीड़ है, झरोखे हैं दृश्य फिर अनोखे हैं
छाँवनी छँहाने को काशी है, मथुरा है

योगी हैं, स्वामी हैं सब अन्तर्यामी हैं
भाषा की खाई है, केरल है, त्रिपुरा है

# खाली जेबों वाला ईश्वर

खुद की ख़ातिर भी मँहगा है ख़ाली जेबों वाला ईश्वर
भला बताओ क्या दे सकता
उसके पास नहीं है कुछ भी
भक्तों ने रक्खा है उसको
मन्दिर में, मस्जिद में गिरवी
कीर्तन-भजन अचेत पड़े हैं, हैं अजान के घायल से स्वर

उसके दोनों हाथ बँधे हैं
बेचारा जैसे हो क़ैदी
चलती है आँधी अधर्म की
स्वयं धर्म ने जिसको शह दी
वो निर्जीव मूर्तियों में है लोग जान देते हैं उस पर

गूँगा है कुछ कह ना पाए
देखे क्या, धृतराष्ट्र सरीखा
कण-कण में था, कहीं-नहीं अब
यह सच भी है, कितना तीखा?
ईंट-पत्थरों की मजार है सच है बस सीने का पत्थर

जबड़ों में अभिव्यक्ति फँसी है
नहीं गले से उतर रहा कुछ
वो है भी तो, दीमक सा है
भीतर-भीतर कुतर रहा कुछ
प्रवचन प्रवंचना से लगते शस्त्र लिये हैं ढाई अक्षर

## सुनना जी!

सुनना जी!
माँग मत मछलियों की करना
सूखा है नदी-ताल
सूख गया झरना

टूट रहे मन ही में
वंशी के काँटे
सन्नाटा साँसों का
साँसों को डाँटे
है अपरम्पार दर्द,
पार क्या उतरना

डूब गया सूर्य
है दुपहरी में संझा
झेल रहे पेड़,
चक्रवात और झंझा
बस देखो पत्तों सा
टूटना-बिखरना

चेहरों पर बंद
सौ किवाड़ों की सख़्ती
अशुभ हो गयी है
शुभनामों की तख़्ती
आया है हाथ, सिर्फ
टीसना-अखरना

# दूब की असहमति

पर्वतों के बीच में भी
साफ दिखती है
दूब की भी असहमति
मायने रखती है

हर नये निष्कर्ष से
आँखें मिलाती है
ओस पीकर, धूप के सँग
खिलखिलाती है
विनयपूर्वक सत्य का
आस्वाद चखती है

लघु भले अस्तित्व,
जीवन मूल्य पोसा है
सिर उठाते हुए
बिरवों का भरोसा है
उपस्थिति से जुल्म का
रथ रोक सकती है

झोल खाती है हवा में,
डोर कसती है
रौंद जाते, पाँव हाथी के
कि हँसती है
हर सभा में,
मसअलों के साथ पकती है

## मीलों चलना होता है

भीतर-भीतर कितनी बार
उबलना होता है
बालू बाँध पाँव में
मीलों चलना होता है

ख़ामोशी कोने-अतरों से
झाँका करती है
सिल कर होंठ, मूल्य शब्दों का
आँका करती है
अँधियारों में बिना रोशनी
जलना होता है

कभी-कभी गलियाँ -चौराहे
गाली बकते हैं
कौल्हू के जो बैल,
परिधि में अपनी थकते हैं
बंद सुरंगों से भी हमें
निकलना होता है

मौन ठिठुरते हैं,
अपनी ही आग सौंपते हैं
हम वहशी अतीत को
जीवन राग सौंपते हैं
बर्फ़ीली चट्टानों जैसा
गलना होता है

# स्वप्न हों भोपाल के

स्वप्न हों भोपाल के
या नयी दिल्ली के
टूटते ही हैं किले तो
शेखचिल्ली के

सल्तनत तो शान से
केचुल बदलती है
भीढ़ बढ़ती, दाल सबकी
नहीं गलती है
दूध पीते साँप,
फूटें भाग्य बिल्ली के

चित्र कुछ खिंचते
मगर कुछ और आते हैं
कैमरे भी ग़लतियों के
गीत गाते हैं
क्या करें सिंहावलोकन,
भाल के टीके

ठीक करती है मुड़ी कॉलर
झुके काँधे
हर बग़ावत आज,
घुँघरू पाँव में बाँधे
छींकते से लोग उचकें
दूर हैं छींके

# पहिए होते हैं शहरों के

कैसे चेहरे
सुबहों के, दोपहरों के
पाँव नहीं
पहिए होते हैं शहरों के

बिन पानी ही
बहते कूल-किनारे हैं
यूँ तो होते,
पत्थर के फव्वारे हैं
'अल्फा-बेट' में,
खोये बोल ककहरों के

रिश्ते भी तो,
पानी-पत्थर-लोहे हैं
अनाचार की ज़िल्द
नीति के दोहे हैं
भाव नहीं कुछ
उठती-गिरती लहरों के

जेबें सुरसा हैं,
पैसों के कीड़े हैं
दुखती पेट-कमर
टूटी सी रीढ़े हैं
और गरीबी
मुँह ज्यों सूखी नहरों के

# रास्ता कोई नहीं है

बर्फ का साम्राज्य फैला है
रास्ता कोई नहीं है
यह व्यवस्था
दूध की धोई नहीं है

काँपते हैं होंठ,
कुहरा काँपता है
सिर्फ़ सन्नाटा
दिशाएँ नापता है
कौन सी है आस
जो खोई नहीं है

देह अकड़ी है,
सभी संवाद ऐंठे
फूल-पत्ते
बात करना भूल बैठे
फूटकर उम्मीद
कब रोई नहीं है

देवदारों में खुलीं
अंधी गुफाएँ
जड़ जमा, फुफकारती हैं
मान्यताएँ
धूप ने पहली किरन
बोई नहीं है

# गहरी उमस साफ कहती है

कोई नहीं रेत के घर में
प्यासा तरसेगा
गहरी उमस, साफ़ कहती है
पानी बरसेगा

गीत-घरौंदे भरी भीड़ में
आँखें खोलेंगे
चुप्पी साधे हैं जो चेहरे
जी भर बोलेंगे
भूखे बच्चों को यह मौसम
थाली परसेगा

टूट गए सपनों की भी
भरपाई होगी ही
कोई नहीं जियेगा
जिंदगानी आधी-तीही
हरषेंगे दालान-बरोठे
आँगन हरषेगा

बर्फ़ीले पहाड़ पर भी
पदचिन्ह बनाएँगे
काई का अस्तित्व
फिसलते पाँव बताएँगे
खुद उधेड़बुन की आँखों को
सूरज दरसेगा

## स्याही चुक गयी

क्या अजब था
बीच रस्ते में कलम ही रुक गयी
थी अभी संवेदना बाकी
कि स्याही चुक गयी

भावनाओं का चरम था
थरथराते भाव थे
अर्थ पाने के लिये
बेचैन सारे घाव थे
बिंदु था कोई कि जिस पर
दृष्टि आकर रुक गयी

बहुत सारे आसमाँ थे
और मन में आग थी
गुनगुनाती साँस ही तो
ज़िंदगी का राग थी
पक रहे थे बाल,
कटने को फ़सल भी पक गयी

एक परछाँई अभी भी
झिलमिलाती याद की
चाव से हैं बात करतीं
घाटियाँ अवसाद की
प्रार्थना मुद्रा सहेजे
शाम तट पर झुक गयी

# हड्डी तेल न छोड़े

ठंडी रेत न उछले दाना
हड्डी तेल न छोड़े
मन है तू पाखी तो उड़ ले
काहे को सिर फोड़े

ढूँढ सके तो ढूँढ,
खो गए गन्धों के गलियारे
पाँव समेटें, पाँव पसारें
मटमैले उजियारे
तोड़ पहाड़ों को निगाह से
तिनके काहे तोड़े

अपना पारावार समझ ले
बाँध न पत्थर पर में
हर उड़ान का आसमान हो
उड़ती हुई नजर में
आहों भर ले आग,
कि गहरी साँसें क्यों कर छोड़े

नज़र हवा की भी
नज़रों में हो, हों तीखे तेवर
बात-बात पर धूप सुबह की
बदले नहीं कलेवर
बेहतर है तू हर जुड़ाव को
रचना सा ही जोड़े

# शब्द रखे हैं मुँह पर उँगली

अपनी ही अस्थियाँ चुन रहीं
साँसें शमसानों में
जीवन के अवशेष न ढूँढो
तुम कब्रिस्तानों में

जिंदा शक्लों में डूबी हैं
सूरज की संतानें
पता नहीं क्यों अपने से ही
शीत युद्ध हैं ठाने
खँडहर में अतीत चिल्लाता
गूँज बियाबानों में

शब्द रखे हैं मुँह पर उँगली
लगातार खामोशी
सुबह रात सी स्याह,
सीढ़ियाँ चढ़ती सी बेहोशी
जैसे भूत लोटते हैं अब
मन के तहखानों में

आग तलहटी में सोयी है
सीलन भरी दिशाएँ
आँख दिखाते दुःस्वप्नों की
झूलें बढ़ी जटाएँ
शाप बिछाएँ-ओढ़े, हम हैं
खोयी पहचानों में

## प्यास की बातें

कुछ न होगा तैश से
या सिर्फ़ तेवर से
चल रही हैं, प्यास की
बातें समन्दर से

रोशनी के काफ़िले भी
भ्रम सिरजते हैं
स्वर अगर ख़ामोश होते
और बजते हैं
अब निकलना ही पड़ेगा
गाँव से, घर से

एक सी शुभचिंतकों की
शक्ल लगती है
रात सोती है,
हमारी नींद जगती है
जानिए तो सत्य
भीतर और बाहर से

जोहती हैं बाट आँखें
घाव बहता है
हर कथानक आदमी की
घात कहता है
किसलिए सिर मारिए,
दिन-रात पत्थर से

# एक चाँद ईद का

खिला-खिला चेहरा है
मन की उम्मीद का
चार-चाँद लगा गया
एक चाँद ईद का

लोच कौन लिख पाया
हरी देह शाखों का
मौन झिलमिलाता है
दीपदान आँखों का
रोशनी नहाई है
मत पूछो दीद का

फूलों की साँसों में
गन्ध कसमसाई है
घर के कोने-अतरे
किरन की रसाई है
खिड़की से देखो तो
ऑगन खुर्शीद का

मेरे हित, अपना भी
तुम्हें ख्याल रखना है
कश्ती में हवा,
हवा बीच पाल रखना है
देखना असर हमको
अपनी ताक़ीद का

# प्रत्यय झूठे हैं

लोग कि अपने सिमटेपन में
बिखरे-बिखरे हैं
राजमार्ग भी, पगडंडी से
ज़्यादा सँकरे हैं

हर उपसर्ग हाथ मलता है,
प्रत्यय झूठे हैं
पता नहीं है औषधियों को
दर्द अनूठे हैं
आँखें मलते हुए सवेरे
अक्सर अखरे हैं

है भविष्य भी
बीते दिन के गलियारों जैसा
पेड़ धुएँ का लहराता है
अँधियारों जैसा
आँखों निचुड़ रहे से
उजियारों के क़तरे हैं

उन्हें उठाते
जो जग से उठ जाया करते हैं
देख मज़ारों को हम
शीश झुकाया करते हैं
सही बात कहने के सुख के
अपने ख़तरे हैं

# केवल झण्डे लहरे हैं

अँधियारे विचार धारा के
कितने गहरे हैं
नारे होठों पर, लेकिन
साँसों पर पहरे हैं

हम ही पीछे लौटे,
नयी सदी तो सिर पर है
नही खिसकता, सन्नाटा भी
भारी पत्थर है
शब्द आग के,
मगर बँधे पानी से ठहरे हैं

एक राह है,
उसके पीछे सौ चौराहे हैं
तथ्य लापता,
जितने मुँह उतनी अफवाहें हैं
कोई लहर नहीं है
केवल झण्डे लहरे हैं

कहीं समर्थन
कहीं भीड़ के तेवर तीखे हैं
मन्दिर-मस्जिद की ईटों में
घुटती चीखे हैं
कदम-कदम पर
सिर्फ भीड़ के नकली चेहरे हैं

# पूजना है आदमी को

मूल्य हैं भगवान यदि तो
आस्था है अडिग रहनी
है भजन में, 'जन' कहीं तो
हमें उसकी बात कहनी

रोशनी को पूजना है
पूजना है आदमी को
सिर्फ जीना ही नहीं है
अर्थ देना जिंदगी को
जन्म लेगा ही सवेरा
है अभी तो पीर सहनी

रूढ़ियों को तोड़ना है
जोड़ना है सभ्यता को
आग गीली है कि क्या है
अर्घ्य देना देवता को
बंद करना है इन्हें अब,
है तमाशे सिर्फ जेहनी

दूर घाटी से उठी,
आवाज़ अपना सच नहीं है
ढूँढनी है आग, करवट ले रही
शायद कहीं है
बहुत सम्भव है, मरुस्थल में
अभी फिर नदी बहनी

# शब्द चिट्ठियों में

अपनापन आहट देता है
हरी पत्तियों में
कितने अर्थवान होते हैं
शब्द चिट्ठियों में

धूप टेरती,
बंद खिड़कियाँ खुल-खुल जाती हैं
बीते दिन की बारिश में
यादें धुल जाती हैं
समाधान मिलते हैं,
उलझी हुई गुत्थियों में

शहद सनी भाषा होती है
भाव जागते हैं
सपने आँखों से,
चुटकी भर नींद माँगते हैं
नींद नदी हो जाती
तिरते स्वप्न कश्तियों में

हिरन हुए पल,
फिर हिरनों से हैं कुलाँच भरते
पंख तितलियों के,
रंगों के झरने हैं झरते
जग-जाते हैं,
सुरधनु से त्यौहार दृष्टियो मे

## तपती गिद्ध दुपहरी

खड़ी फसल को कौए ताकें
तपती गिद्ध-दुपहरी
चील-झपट्टों से डरती है
घर की सूनी देहरी

धूप पसीना छोड़ रही है
चील कि अंडे छोड़ें
सूरज का तर माथा, किरनें
सौ-सौ छालें फ़ोड़ें
चारों तरफ़ चिलचिलाती है
हर उम्मीद सुनहरी

सिर्फ़ मुहर हो गया आदमी
यहाँ-वहाँ है लगता
सुविधाओं पर करे दस्तख़त
अपने को ही ठगता
भूखे चेहरे, प्यासी फाइल
दिखे हथेली गहरी

खेतों-खलिहानों की आँखें
पछतावों में खुलतीं
बीच कचहरी, काली छायाएँ
हैं हिलतीं-डुलतीं
पगडंडी से क्रीज सँभाले
गुज़रें साहब शहरी

## सूरज उछलेगा

अँधियारा है, यहीं-कहीं
फिर सूरज उछलेगा
लगता है कुछ लिखने से ही
मौसम बदलेगा

चुप है हवा, पत्तियाँ चुप हैं
सन्नाटा जागे
मन में चुभकर टूट गया सा
हर काँटा जागे
फूलों से खुशबू का
गहरा मानी निकलेगा

धुंध और कुहरे की
सौ खिड़कियाँ खोलती सी
देवदार से उतरेगी
कुछ धूप बोलती सी
पिघलेगी जब बर्फ़,
दर्द भी तो कुछ पिघलेगा

ठहरे पानी में हलचल के
समीकरण होंगे
लहरों में करवट लेगें ही
सीप और घोंघे
सच अपनी ज़मीन पर
आख़िर कितना फिसलेगा?

# उड़ान से पहले

हम सोचें भी क्या
थकान से पहले
तोल रहे हैं पर
उड़ान से पहले
क्या है

उड़ने की इच्छा से बेहतर
दरकेगा
नाउम्मीदी का पत्थर
ये जमीन है
आसमान से पहले

धूप-हवा पानी से
मिलना है
अभी हमें तो खुलकर
खिलना है
जागा जीवन-राग
तान से पहले

उगने से पहले की
सुनगुन है
करवट लेती सी
कोई धुन है
देखें भरसक, बीज
ध्यान से पहले

## ये बच्चे

ये बच्चे डलियाँ बुनते हैं
फुटपाथों पर बैठ किनारे
बिल्डिंग का हल्ला सुनते हैं

पाई-पाई जोड़ रहे हैं
तिनका-तिनका तोड़ रहे हैं
कभी बाँस को छील रहे हैं
कभी बाँस को मोड़ रहे हैं
वाजिब दाम नहीं मिलता जब
थके-थके से सिर धुनते हैं

इनका जीवन औंधी थाली
खाते, डाँट-मार, ग़म-गाली
छलती हैं कारें-सरकारें
इनकी तो सुबहें भी काली
फूल चुनें साहब के छोरे
ये तो ज़ख़्मों को चुनते हैं

पलथी-पलथी दर्द समेटे
ये पटरी पर लेटे-बैठे
चुभती फाँस, खून बह निकले
हँसते बड़े बाप के बेटे
डलिया क्या बुनते हैं जैसे
कोई सपना ही बुनते हैं

# माँ कि जैसे एक चुप्पी

कुछ नहीं अब रह गया है
काँपते स्वर में
माँ कि जैसे एक चुप्पी
डोलती घर में

नापती दालान-आँगन
फूलती है साँस
कहीं मन में चुभे-टूटे
रोज़ कोई फाँस
मर रही है प्रार्थना
हर एक अक्षर में

पिता को गुज़रे हुए
हो गए कितने साल
पके सारे बाल
करते सिर्फ़ रोटी-दाल
मोम थी, तब्दील होती गयी
पत्थर में
हुए मन के, आँख के तारे
ज़ेहन के फूल
'गोर्की की माँ' पड़ी सी
खा रही है धूल
जिल्द उखड़ी, उड़े पन्ने
दीद-ए-तर में

# आया था जो पन्द्रह अगस्त

हम भीड़ बने, हम शोर बने
बहुमत को फिर से छला गया
आया था जो पन्द्रह अगस्त
कुछ सपने देकर चला गया

पोस्टर - नारे- झण्डे लहरे
लहराया आँखों का पानी
हम कस्बे वाले टी० वी० में
देखते रहे गए रजधानी
कोई भी मुठ्ठी क्या कसती
केवल हाथों को मला गया

हम रहे बाँचतें संविधान
अनपढ़ी रह गयी इच्छाएँ
अभिव्यक्ति हमारी हुई पंगु
अकुलायी पन्द्रह भाषाएँ
मन का सारा लोहा पिघला
जन-गण-मन हमको रुला गया
बस्ती के कानों में गूँजा
विस्फोट - धमाका, शासन का
क्या अर्थ रसोई में समझो
औंधे से ख़ाली बर्तन का
फिर भरे पेट वाला चेहरा
जीते जी हमको जला गया

## शब्द जैसे प्रार्थनाओं के चने हैं

हर जगह 'भवदीय' हैं
या झुके सर हैं
लोग जैसे उड़ानों के
कटे पर हैं

जोड़ते हैं हाथ,
घिघियाते हमेशा
दीनता भी हो गयी है,
एक पेशा
स्वाभिमानों के
जले से हुए घर हैं

हर समय दरबार की
संख्या बढ़ाते काढ़ते हैं खीस,
मुस्कानें कढ़ाते
होठ अपना काटते से
सिर्फ़ डर हैं

साहबों के लिए ही
बंदे बने हैं
शब्द जैसे प्रार्थनाओं के,
चने हैं
कहीं सप्तक हैं,
कहीं पर मन्द्र स्वर हैं

# जिएँ सर्दी को

जिएँ सर्दी को
नहाएँ गरम पानी से
बात आपस में करें कुछ
बेजुबानी से

ताक पर रख दें थकन को
तजें चिन्ताएँ
याद कर लें जिंदगी से
सजी घटनाएँ
भरी दुपहर हों मुख़ातिब
रातरानी से

चंद साँसों को पिरोएँ
फूल से मन में
आसमानों को भरें
खामोश आँगन में
रचें संजीदा ग़ज़ल
हम छेड़खानी से

धूप की किरनें
अगरचे पास आ आएँ
टूट जाएँ,
टूटने को बनी सीमाएँ
कुछ अजूबा ही घटे
सादाबयानी से

## परिन्दों! पेड़ पर बैठो नहीं अब

बहुत गहरा अकेलापन जगा है
कहो तो कुछ, तुम्ही बोलो करें क्या?
हमें आवाज़ देती मयकशी है
कि अपने पाँव उस जानिब धरें क्या?

तमन्ना, बेकली, अरमान, खुशबू
कई एहसास हँसते दीखते हैं
नहीं है फूल पर कोई तबस्सुम
कि सब सायास हँसते दीखते हैं
बहुत ही खुश्क मौसम है, हवा है
कि अपनी आँख आँसू से भरें क्या?

यहीं पर एक परछाँई कहीं थी
कि गुम है धूप को शायद पता हो
परिन्दों! पेड़ पर बैठो नहीं अब
न जाने कौन सा सदमा अता हो
यही है ज़िन्दगी तो, ज़िन्दगी को
भरोसा साँस का देकर मरें क्या?

बचा है साथ बस किरदार अपना
कि अपने लोग सारे जा चुके हैं
लबों पर है बहुत ख़ामोश नग़मा
हम अपने दर्द को भी गा चुके हैं
बड़ी जाँबाज़ दिल की तीरगी है
हम अपने आप से ही फिर डरें क्या?

# दृश्य अपरम्पार से हैं

पार इनके कौन देखे
दृश्य अपरम्पार से हैं
पर्व से पर्वत सजे हैं
पेड़ चौकीदार से हैं
बर्फ सी चुप्पी,
इन्हीं में गूँजती बतियाहटें हैं
एक कल जो है अबीता
उसी कल की आहटें हैं
मध्यपृष्ठों से खुले
कुहरे स्वयं अखबार से हैं

है हरा सब कुछ
जगे से देवदारों के वनों में
फूल सा हर दर्द खिलता
झिलमिलाते लोचनों में
खिड़कियों पर सर्द झोंके
चिट्ठियों से, तार से हैं

जिंदगी कितनी कठिन है
सरल चेहरे ही बताएँ
घास का गठ्ठर सिरों पर
लादकर चलती प्रथाएँ
घाटियों के गीत
युद्धो के लिये तैयार से हैं

# अँजुरी में समुद्र जल

ओ रे पिता ! उम्र से बोझिल
मुझको तू लगता पल जैसे
मेरे हाथों माथ तुम्हारा
अँजुरी में समुद्र जल जैसे

झुर्रीदार अँधेरा मुख पर
उजियारे की नदी प्रान में
आँखों में आँसू लगते हैं
जैसे तारे आसमान में
वर्तमान की डोरी पकड़े
बीत रहा कोई कल जैसे

रेशे-रेशे में रसमयता
ढेर विवशताएँ आँखों में
धीरे-धीरे घुन लगता है
जैसे हरियल सी शाखों में
घुनकर भी है दृष्टि तुम्हारी
पूजा का तुलसीदल जैसे
दे-देकर थपकियाँ सुलाता
दे-देकर थपकियाँ जगाता
ध्यान तुम्हारा जैसे कोई
गंगा में डुबकियाँ लगाता
फूल-फूल खिलता बारिश में
गंध-गंध हो जंगल जैसे

# नदी गल रही भीतर-भीतर

नीचे है चट्टान बर्फ़ की
केवल सिरा दिख रहा ऊपर
अपनी पीर बताए कैसे
नदी गल रही भीतर-भीतर

उलझा करती नाव भँवर से
टकरा जाती चट्टानों से
कौन सुने लहरों का रोना
पानी भरे हुए कानों से
उग्र बहुत मझधार हुए हैं
तट दिखते हैं कातर-कातर

नाव चलाए जल पर आरी
खोते हैं मस्तूल, दिशाएँ
उलट-पुलट देती हैं सबकुछ
पगलाई सी तेज हवाएँ
कौन थहाए गहराई को
कैसे हटे राह का पत्थर

रह-रहकर कगार कटते हैं
रह-रहकर कटती है नदिया
दिन-दिन देह छुपाती अपनी
मौन सयानी होती रधिया
टेरे कौन दिये की लौ को
खुद ही काँपे थर-थर-थर-थर

# पुए पकाना पानी में

तरह-तरह के जादू-टोने
चलते हैं रजधानी में
तुम क्या समझोगे लोगों का
पुए पकाना पानी में

दाँतों तले दबाते उँगली
बड़े-बड़े आला चेहरे
बुनते रहते हैं अपनी ही
आँखों में जाला चेहरे
रावण से सपने होते हैं
इनकी रामकहानी में

काट न पाते दिन,
उम्मीदों से खुद ही कट जाते हैं
रत्नजटित औजार देखकर
आपस में बँट-बँट जाते हैं
हम अपनी पहचान खो रहे
झूठी बोली-बानी में

भूल वर्णमाला जीवन की
जाति-वर्ण को पोस रहे
कोस रहे हैं उजियारों को
खुद ही काले कोस रहे
करवट लेते महल-अटारी
टूटे छप्पर-छानी में

# धूप-दीप की बातें

लाठी पीटे अलग न होगी काई
भीतर जल है
मन में सौ तूफ़ान छुपाए
आने वाला कल है

आर्त्तनाद वाले दिन
बालू भी निचोड़ सकते हैं
काली रातों की जलती सी
आँख फोड़ सकते हैं
एक 'हाय' के पीछे
जाने किस-किस का मंगल है

घना अँधेरा गा सकती हैं
धूप-दीप की बातें
तपते हुए जेठ से पूछो
क्या होती बरसातें
किसे पता है, किसकी ख़ातिर
मौसम फिर विह्वल है

कितना घमासान भीतर है
बाहर से अंदाज़ो
तुम हो नहीं आदमी
तुम तो खुल जाओ दरवाजो !
तुम से ज्यादा तुम पर लटकी
साँकल ही बेकल है

# हम कि योद्धा हैं

हम कि योद्धा हैं, करें क्या
वार ही खाली गये हैं
जन्म से ही लड़ रहे हैं
लोग पर कहते नये हैं

वक़्त नंगे तार सा है
क्या पता, कब किसे छू ले
हमें पहचानें भला क्या
धूल के उठते बगूले
हम कि घटनाहीन लगते
मगर गहरे वाकिये हैं

हैं उगे नाखून मन में
उन्हीं से कुछ लिख रही है
आँख में तारीकियों की,
धूल उड़ती दिख रही है
हम कि टूटे घोसलों में
छटपटाते से बये हैं

मुस्कुराए-पुजे, लेकिन
गिर पड़े तो तमतमाये
लोग चढ़कर ही चने के
झाड़ पर फूले-समाये
हम कि अपना ही ठिकाना
ढूँढ़ते से डाकिये हैं

## शहर हुआ है ब्रह्माओं का

सिर ऊँचा है घटनाओं का
शहर हुआ है ब्रह्माओं का
होता हवन, धुएँ के पर्वत से
झरता भभूत जैसा है
पहर-पहर अँधियारा ओढ़े
यम के किसी दूत जैसा है
बढ़ता मूल्य अमरताओं का

सिद्धि स्वयं ही पाँव दबाती
सिद्ध हुए से सन्नाटे हैं
हुई मंत्रणा, संतों ने फिर
आपस में त्रिशूल बाँटे हैं
जागा धर्म पताकाओं का

बात-बात उन्मादी पीढ़ी की
जलती तीली लगती है
बलि का खून बहे, मन्दिर की
हर सीढ़ी गीली लगती है
ढंग अजब है पूजाओं का

जितने हैं हठयोग कि मन में
समझौतों की सेंध लगाते
अट्टहास करते हैं, दैहिक
दैविक-भौतिक ताप मिटाते
वंश फले बर्बरताओं का

# बदल गए बादल के चेहरे

हाँफ रही है नदी रेत में
प्यास धूप में उबल रही
याद आज भी मछली सी है
हाथों आकर फिसल रही

बदल गए बादल के चेहरे
लगते दुनियादारी से
झुलस गयी हैं लहरें सारी
बूँद-बूँद चिनगारी से
समय बदलता नहीं उस तरह
जैसे हर तिथि बदल रही

परिवर्तन जानता नहीं है
कैलेण्डर की तब्दीली
भक से जलती है, बुझ जाती
दियासलाई की तीली
बीते दिन के बरामदे में
कल की छाया टहल रही

दाँव-पेंच से, जश्न मनाते
लोगों का भी क्या कहिए
फाड़ रहे हैं गला मसीहा
कान खोल सुनिए-सहिए
दृश्य अविश्वसनीय, सत्य की
खिड़की आँखें मसल रही

# टोपी

इन्हें पता है, क्या होता है
राजनीति का जादू-मंतर
टोपी की ही नाव बनाकर
पार कर रहे हैं भवसागर

टोपी की ही लहरें भी हैं
उठती हैं, आकाश उठातीं
भवसागर में कई समन्दर
टोपी के हैं, यह बतलातीं
खूसट से सौन्दर्य बोध को
कुछ भी लगता नहीं असुंदर

होती हैं गोष्ठी-सभाएँ
कमरों से टोपियाँ निकलतीं
बात-बात पर बिना बात ही
इस-उसकी टोपियाँ उछलतीं
सत्ता की षोडषी साथ ले
बूढ़े होते हैं हमबिस्तर

तय करते हैं बंद किवाड़े
दीवारों के पोस्टर नारे
बनते पक्के घाट, फेंकते
सबको बहुत मुलायम चारे
मति मारी जाती जनता की
जमकर करते राज मछन्दर

# बूढ़ा लोकतंत्र

समझ न पाता, उथलेपन की
गहरी सी चालों को
बूढ़ा लोकतंत्र गिनता है
अब सफ़ेद बालों को

बहुत गिन चुका सिर
पर कोई हाथ न आया ऐसा
जिस पर राज न करता हो
काले धन वाला भैंसा
अजब सांख्यिकी है,
छलती आयी वर्षों-सालों को

समय देखता, बुझी आँख से
कुर्सी के पायों को
चौपायों से बदतर हैं
सब रौंदें असहायों को
घड़ियाली आँसू, शिकस्त देते
नदियों-नालों को

जिसकी पूँछ पकड़ते, उसकी ही
गर्दन कसते हैं
है अँधेर नगरी, इसमें सब
ऐसे ही बसते हैं
क्या सोचे गणतंत्र, देखकर
बद पड़े तालो को

# फूल की चादर समेटो भी

फूल की चादर समेटो भी
अब सड़क की ओर रुख़ करना ज़रूरी है
बहुत से दायित्व फिर से घेरते हैं
काम पर जा रहे चेहरे टेरते हैं
फूल की चादर समेटो भी
भोर की हर प्रार्थना लगती अधूरी है

फेरना क्या पीठ अपने से कहीं
आँख मूँदों भीड़ से अच्छा नहीं
फूल की चादर समेटो भी
मौसमों की खल रही ये जी-हुजूरी है
आदमी की गन्ध में जीवन जगे
गन्ध क्यों लोहबान की अच्छी लगे
फूल की चादर समेटो भी
हर दिशा, खुद ईंगुरी सी है, कपूरी है

मृत्यु भय का प्रेत, जनता को ठगे क्यों
जिंदगी के स्वाद पर काई लगे क्यों
फूल की चादर समेटो भी
स्वयं अपने मूल से किसलिए दूरी है?

देह पर फुटपाथ की कोड़े बने हैं
पीठ पर दिन, भागते घोड़े बने हैं
फूल की चादर समेटो भी
सोच अपनी है अगर तो तेज़ छूरी है

# पारदर्शी जल बुलाता है

हटाकर काई जरा देखो
मुस्कुराता पारदर्शी जल बुलाता है
आइना है आइना विश्वास का
आइने में कल बुलाता है

अब नहीं औधीं मिलेगी जान लो
नाव की तुम पीठ क्यों देखो
हर लहर से जोड़ लो मन की लहर
हर लहर है ढीठ क्यों देखो
बीच अँजुरी से न रिस जाए कहीं
प्रार्थना का पल बुलाता है

अपशकुन की मेट कर सारी कथा
घाट पर ठहरी हुई है यह नदी
याद में अब भी महकते हैं कमल
करवटें ले, कुछ कहे गुलदावदी
है झकोरों से भरा त्यौहार की
गाँव का पीपल बुलाता है

बंद दरवाज़ों सरीखे लोग थे
खुल गए हैं, छू गयी कोई हवा
मौन हो लेती हिलोरें प्राण में
बात करती, सिंधु-सलतज-बेतवा
एक गंगा गुनगुनाती है कहीं
कौन हो विह्वल बुलाता है

# छाते थे धुएँ के

जीवन भर भूख ने जिया है बस बुझी हुई, भट्ठी के तावों को
हमने तो सिर्फ़ रेलगाड़ी से देखा है खेतों को, गाँवों को
सच पूछो तो अपनी ख़ातिर ये
छप्पर-हल-बैल सब पहेली हैं
धूप-धूप झुलसी सी यादें कब
खलिहानों में जी भर खेली हैं
छूट रहे दिन, छूटा नहीं मगर चश्मे से देखना अभावों को

सबब कौन पूछे भी अपने से
हाँफ रही अँधी यात्राओं का
जीवन के छंद भी जुड़ें कैसे
है हुजूम, टूटी मात्राओं का
आँसू की नदी ही सँजोए थी जल पीती आँखों की नावों को

भाग रहे पेड़ से, पहाड़ों से
अपना सम्बन्ध नहीं जुड़ पाया
मन में जो ख़्वाब का परिंदा था
पूरे आकाश नहीं उड़ पाया
छाते थे धुएँ के बचाते क्या बारिश से भीगते अलावों को

ठंडी थी, रेत-रेत ठंडी थी
दाने संवाद से उछलते क्या
हम जमती बर्फ़ थे शिराओं में
ठंडा सा खून थे उबलते क्या
धड़ से थे अलग स्वाभिमानी सिर हम तरसे अपनी ही छाँवों को

# बहुत ज़रूरी है सपने हों

बहुत ज़रूरी है सपने हों तब तो कुछ साकार करें हम

हर प्रसंग आइना बने खुद
वादी हो, खुद प्रतिवादी हो
धूप-हँसी होठों से थिरके
आँखों से बूँदा-बाँदी हो
पल-छिन खुर्दबीन से देखें पल-छिन को त्यौहार करें हम

उन आँखों का भी क्या कहिए
जिनमें स्वप्न नहीं है कोई
उनके लिये सवेरा क्या है
रातें क्या चाँदनी भिगोई
ऐसी आँखों से भी जुड़कर अपनी आँखें चार करें हम

उसको भी पलकों से चुन लें
जो लिखने से रह जाता है
अँजुरी में बाँधे उस पल को
जो लहरों में बह जाता है
मन पर बोझ बने से कल को खुलकर अस्वीकार करें हम

अभी यहाँ उलझी शाखों से
पलक झपी तो और कहीं है
उस बयार से कुछ बतियाएँ
जिसका कोई ठौर नहीं है
गन्ध भरें उसकी साँसों में फिर साँसों को प्यार करें हम

# कातर मछली आँखें

पानी के भीतर-भीतर आँसू बोती है
हर नदिया अपनी गहराई में रोती है

कभी न पीती आँसू
सन्नाटा पीती है
चौंक-चौंक कर, दिन-दिन भर
मरती-जीती है
रातों को भी अजब 'कुकुरनिंदिया' सोती है

थक जाती है,
आखिर कितना मन में झाँके
सूज-सूज जाती हैं
कातर मछली आँखें
बार-बार अपनी निचुड़ा चेहरा धोती है

भँवर बीच ही गन्ध निचोड़े
फूल बिचारे
पनिया उठते, पथराये से
कूल-किनारे
ढाँढस सी हर धार कि खुद धीरज खोती है

गहन अँधेरा
पुल पर जली बत्तियाँ देखे
कौन लहर में
काली पड़ी पत्तियाँ देखे
सतह-सतह, सीने पर तारीखें ढोती है

# कल हमारा है

आज अपना हो न हो
पर कल हमारा है
रोशनी की आहटें सी आ रही हैं
खिड़कियाँ भी गीत जैसे गा रही हैं
धार में ही उग रहा
कोई किनारा है

रात में भी झिलमिलाहट लिख रहा है
जो कहीं भी टिमटिमाता दिख रहा है
सच कि ऐसा बहुत अपना
हर सितारा है

टूटकर संवाद फिर-फिर जुड़ रहे हैं
है भले आतंक, पंछी उड़ रहे हैं
है धुआँ, तो क्या
अगर आकाश सारा है

खो गयी सी लहर कोई मिल रही है
आँख में आकाश गंगा खिल रही है
हैं नहाते स्वप्न
अँजुरी बीच धारा है

झूमती बौछार दरपन बो रही है
नींद में घनघोर बारिश हो रही है
नाव से क्षण हैं,
क्षणों का भी सहारा है

# पिता बूढ़ा है

पिता बूढ़ा है कि कुछ दिन का कहो मेहमान सा है
रात के काले पहर में एक आतिशदान सा है

यह अँधेरा
और गहरा, और भी गहरा दिखेगा
बहुत मुश्किल से उजाला
एक भी आखर लिखेगा
मौन दरवाजा भले जर्जर कि घर की शान सा है

छू नहीं पाती हमें
सीलन कभी, रहते उसी के
थकी आँखों देखता है
रास्ते सारे खुशी के
ट्रेन आयी नहीं खुद ही बँध चुके सामान सा है

हम कि अपने ही लिये
देते उसे आदर दिलों से
वो बताता है कि बच्चे
लड़ें कैसे मुश्किलों से
हम कि उसके फूल-फल हैं वो हमारी जान सा है

आज भी सौ ज़ख़्म ज़िंदा
अधमरे से हैं जेहन में
पर सवेरा गूँथता है
हर कली में, हर किरन में
सुन रहा ऊँचा कि फिर भी आहटों पर कान सा है

# हम आँगन का घाम हुए

बिल्ली रस्ता काट गयी थी फिर भी सारे काम हुए
आज का दिन कुछ ऐसा बीता सुख सब अपने नाम हुए

आई समझ बहुत सी बातें
धुआँ कट गया आँखों का
अंधा सा विश्वास गल गया
लोहों लिखी सलाखों का
ऊँचे-ऊँचे पेड़ राह के आशीर्वाद-प्रणाम हुए

भूल-भूमिकाएँ हाथों की
हमने कब पहने मूँगे
हमें टेर सकते थे कैसे
आखिर सम्बोधन गूँगे?
इसीलिए तो जुड़े स्वयं से खुद ही अपने राम हुए

रीढ़ रूढ़ियों की छिन भर में
टूटी, जो थी रही-सही
छींक रही सी घर की खिड़की
शुभ हो गयी अचानक ही
बंद कोठरी से बाहर आ हम आँगन का घाम हुए

हमने अक्सर ही भीतर के
गहरे सन्नाटे सूँघे
जगे रहे काली रातों में
तिलभर कभी नहीं ऊँघे
बनकर जिये आइना, टूटे फिर भी नहीं तमाम हुए

## हर नाव ईंधन हो गयी

भूख कुछ इतनी बढ़ी छल रहा आँगन हो गयी
झील-नदियाँ भूलकर हर नाव ईंधन हो गयी

लहर लपटों सी उठी
चौंके चकरधिन्नी हुए
फिर नये सन्दर्भ,
जलती तीलियों ने हैं छुए
गिरे सपने, नींद लुढ़का हुआ बर्तन हो गयी

देर तक गूँजा धुआँ,
अफसोस! पीला पड़ गया
पाँव का काँटा किसी की
जीभ पर भी गड़ गया
एक सीधी राह, आया मोड़ उलझन हो गयी

हर क़दम पर
अड़चनों के सैकड़ों टीले उगे
कीजिए क्या, जुड़ रहे
संवाद भी गाली लगे
खिड़कियों से खिड़कियों की अजब अनबन हो गयी

है नहीं कोई कि जो
मन मारकर मन की करे
छंद कब स्वच्छंद हैं
हैं भाव लेकिन सिरफिरे
हर घड़ी की मौत अपने आप जीवन हो गयी

## दफ़्ती की तलवारें हैं

बस कहने को ऊँची-ऊँची लोहे की मीनारें हैं
कोई युद्ध लड़े भी कैसे दफ़्ती की तलवारें हैं

कागज़ के हाथी-घोड़े हैं
फटे हुए मंसूबे हैं
प्यादे फर्ज़ी सब गर्दन तक
गहरे ऋण में डूबे हैं
पैदल जितने हैं लगता है सद्भावों के मारे हैं

कोई प्रिज़्म नहीं है
जिससे मन के रंग बिखरते हों
खुलकर कौन हँसे
जब कल के अट्टहास भी डरते हों
नये सिरे से उठने को ही बस गिरती दीवारें हैं

सेंध लगाते सन्नाटे में
शब्द हुए चोरी सारे
गिनने को मुर्दा तारीखें हैं
या फिर जिंदा तारे
मुँह में नहीं ज़ुबाँ, साँसों में घुटती जय-जयकारें हैं

रो-रो पर्व मनाते
हम तो उत्सवजीवी ऐसे हैं
शक्ल आइनों की बदली है
हम तो पहले जैसे हैं
दुख के जाने कितने बादल हैं कितनी बौछारें हैं

## काला कम्बल अँधियारे का

काला कम्बल अँधियारे का समय ओढ़कर बैठा है
ऐसा लगता राक्षस कोई पैर मोड़कर बैठा है

दिये जलाने की मत पूछो
सख़्त मनाही है
सूरज के चेहरे पर भी तो
क्रूर सियाही है
स्वयं सवेरा उजियारे का फ्रेम तोड़कर बैठा है

बीते दिन की याद,
कत्थई है या काही है
पत्थर सरकाती साँसों की
आवाजाही है
एक अकेला चना कहाँ जो भाड़ फोड़कर बैठा है

चुनते दिखें रुई सेम्हल से
दर्द खजांची हैं
बुनकर खाट, फेरते लोढ़ा
शुभ आकांक्षी हैं
आँख फोड़कर बैठा कोई लाज छोड़कर बैठा है

उम्मीदें हैं कृपण
खर्च करतीं कुछ मुश्किल से
शब्द छिटक जाते ज्यों दाने
उछल जायँ सिल से
हर दिन जैसे पाई पाई मौन जोड़कर बैठा है

## लीक पीटने वाले

परम्परा भंजन क्या जानें लीक पीटने वाले
आपस में खुलकर बतियाते हैं पैरों के छाले

ढुलमुल राजनीति से जिनके
मूल्य स्वयं हैं ढुलमुल
हर अवसर पर दिखलाते हैं
अपना चेहरा आकुल
हीन ग्रन्थि से भर-भर उठते हैं खुद विषधर काले

बड़े अधर्मी जो हैं
उनके कई धर्मशाले हैं
चुल्लू भर पानी है
प्यासों को यूँ पौशाले हैं
प्यास दूसरों की क्या समझेंगे आँखों के जाले

बड़े जुझारू, संघर्षों से
टूट गया है नाता
बेच रहे जो देश
वही हैं भारत भाग्य विधाता
हैं सुपुर्द कुछ ही हाथों में सारे कुंजी-ताले

अपनी मिट्टी और जड़ों की
कहती नहीं कहानी
अपने घर में चकराती हैं
अपनी बोली-बानी
भाषा का गौरव सहेजते हैं काले मैकाले

## आँख में हिंसा

आँख में हिंसा कसम है मगर गाँधी की
चल रही हैं जूतियाँ हर ओर चाँदी की

हैं सभी संवाद
जैसे चीखते ताले
इस सदी पर
बस अँधेरा रोशनी डाले
बैठ उकड़ूँ गयी है कविता मुनादी की

आइने भी शपथ लेते
झूठ कहने की
बस पड़ी है हर किसी को
बने रहने की
है नुमायाँ किस तरह करतूत खादी की

बाज़ का मुँह
और चिड़ियों के निवाले हैं
इस तरफ़ से बेख़बर
सारे रिसाले हैं
घाट अपने पीठ अपनी फ़िक्र लादी की

भाल है ही नहीं,
लेकिन तिलक-टीके हैं
हर तरफ दयनीय से
पुरुषार्थ दीखे हैं
साँसे पढ़े है रस्म शादी की

# बचते रहे चोट सहने से

जो कहना चाहा था, शायद वही रह गया है कहने से
कैसे गीत, गीत हो पाता बचते रहे चोट सहने से

कैसे अग्नि स्तवन करते
चिनगारी छूकर ही झुलसे
हर आवाज़ स्वयं में गुम थी
कौन टेरता टूटे पुल से
मन की आग, जगी रहती है भीतर ही भीतर दहने से

ऊँचे-ऊँचे बाँध बने थे
बँधे रहे अँजुरी के जल से
तोड़ अगर पाते अपने को
बाहर आ जाते दलदल से
नदी तभी तक नदी कि जब तक फ़ुर्सत नहीं उसे बहने से

धारा के प्रतिकूल
तैरने की अपनी मुश्किल शर्तें थीं
लेकिन तट ही रहा आँख में
सुविधा की उभरी परतें थीं
मूल्य दबे मिलते मलबों में ऊँची दीवारें ढहने से

सपनों को बौना करती सी
ऊँची-ऊँची दूकानें थीं
चेहरे थे, चेहरों पर तिरतीं
तरह-तरह की मुस्कानें थीं
हाथ न आया सत्य भीड़ का अपने में सिमटे रहने से

## एक फल उम्मीद का

मन कि जैसे झुण्ड चिड़ियों का फुदकता है
एक फल उम्मीद का हर समय पकता है

खिड़कियों से झाँकती हैं
धूप सी यादें
हम समझ ही नहीं पाते
स्वयं को क्या दें
हर अँधेरा रोशनी का स्वाद चखता है

हरी आहट है, हरा मौसम
हरी डालें
क्या ज़रूरी है
कि हम एकांत को पा लें
देखनें में स्वप्न आख़िर कौन थकता है?

बहुत शुभ है नापना
आकाश पंखों से
या कि तट पर खेलना
सीपियों-शंखों से
एड़ियों पर पर्व का पल-छिन उचकता है

खिल रहे, पर नयन
फूलों के सजल से हैं
गौर से सुनिये
कि सारे दिन ग़ज़ल से हैं
एक मतले सी सु बह है रात मकता है

# कटकर पेड़ गूँजते हैं

बात नहीं करती हरियाली गली-मुहल्लों में
कटकर पेड़ गूँजते हैं खिड़की के पल्लों में
कुर्सी और मेज़ रह-रहकर
चीखा करते हैं
भीतर घुटते सन्नाटे को
तीखा करते हैं
लोग कि सुख से रहते तल्लों और दुतल्लों में

लम्बे-लम्बे हाथ,
स्वयं आरी से लगते हैं
जंगल भी तो
टूटी किलकारी से लगते हैं
वन-सम्पदा बची है बस नारों में, हल्लों में

बहुत बड़े हो गए अगर
युकलिप्टस होते हैं
सपनों का क्या है
झूठे से ढाँढस ढोते हैं
रोती दिखें वनस्पतियाँ मँहगे से गल्लों में

मिलता नहीं हरापन,
केवल घाव हरे होते
पत्ते-जो मिलते हैं पथ पर
मरे-मरे होते
पत्थर पर सिर पटके, घूमे
हवा निठल्लों में

# चाँदनी ऐसी

चाँदनी ऐसी कि सब कुछ बाँच लीजे
बाँचिए तो कुछ पढ़ा जाए नहीं
क्या कहें भी कुछ कहा जाए नहीं
बर्फ उजले छुएँ, छूकर झुकें आँखें
आसमानों को निहारें मौन पाँखें
चाँदनी ऐसी कि सब कुछ जान लीजे

जानिए तो दृश्य चुधियाए नहीं
क्या कहें भी सुख सहा जाए नहीं
हर नखत, खत सा खुले, कुछ देर झलके
बिन कहे ही हों उजागर गीत कल के
चाँदनी ऐसी कि सब कुछ बूझ लीजे

बूझिए तो कुछ नज़र आए नहीं
क्या कहें भी चुप रहा जाए नहीं
मरुथलों की रेत को भी मौन सींचे
दूधिया हर धार रह-रह ध्यान खींचे
चाँदनी ऐसी कि सब कुछ ढाँक लीजे

ढाँकिए तो कुछ ढँका जाए नहीं
क्या कहें भी कुछ गहा जाए नहीं
साँस में बहने लगे कुछ नदी जैसा
बहें हम भी लहर की बेचैन लय-सा
चाँदनी ऐसी कि सब कुछ माँग लीजे
माँगिए तो हाथ कुछ आए नहीं
क्या कहें भी मन तहा जाए नहीं

# विषयान्तर के कई तरीके हैं

वक्ताओं के माथे पर तो रोली-टीके हैं
एक विषय है विषयान्तर के कई तरीके हैं

विषय भूख था
देशगान के स्वर में खोया है
स्वाद रोटियों का
सपनों में आकर रोया है
दर्द टाल देने के सबके पास सलीके हैं

हर-चेहरा है पेट
धँसा है खाली पोखर सा
समय हँसाना चाह रहा है
हमको जोकर सा
कई कहकहे हैं जो सन्नाटे में चीखे हैं

आँख मिलाता नहीं
कि सच आनाकानी सा है
जाने क्या हो गया
कि मौसम बेपानी सा है
बिन चीनी की चाय हो गए रिश्ते फीके हैं

वक़्त आ रहा,
उलझे प्रश्नों के उत्तर देंगे
ताली वाले हाथ यही
गर्दन भी कस लेंगे
सुबह आ रही है जो उसके तेवर तीखे हैं

# वृत्त बनाती सी नौकाएँ

कितना देती हैं यात्राएँ
जगी-जगी आँखों में उगतीं जाने कितनी पुराकथाएँ

घाट नींद के भले छूटते
सपने मगर संग हैं चलते
घाटी-घाटी श्वेत फूल से
सौ-सौ दिये बर्फ के जलते
बीच धार में पर्व सिरजतीं वृत्त बनाती सी नौकाएँ

खँडहर-किले-झील-पर्वत भी
बिन बोले कितना बतियाते
लहर तोड़ती पत्थर, जुड़ते
हँसती हुई नदी से नाते
मन के घने मौन में सजतीं फिर जैसे संगीत-सभाएँ

मन्दिर की सीढ़ियाँ उतरती
धूप शाम की धीरे-धीरे
तीखी हुए बिना भी जैसे
कोई किरन कुहासा चीरे
अर्थ नया सा देने लगतीं साँसों को छू रही ऋचाएँ

हम अपनी थकान में खोकर
पाते हैं परिचय प्रणाम का
छाँव अनकहा किस्सा कहती
माथे पर पड़ रहे घाम का
बरबस प्रांसगिक हो उठतीं भूली बिसरी सी घटनाएँ

# हर आहट है कबीर

जागे हैं नदी-ताल
सुलझे हैं सौ सवाल
हर आहट है गुलाल
गीत गुनगुनाने हैं

पूजा का सजा थाल
अच्छा है हालचाल
ओढ़े है हवा शाल
होंठ पर बहाने हैं

साँसों में है अबीर
हर आहट है कबीर
लगे बीच धारा भी
जैसे हो नदी-तीर
नावों में खिंचा पाल
उड़ते हैं खुले बाल
शब्दों में है उछाल
अर्थ डगमगाने हैं

मन सबको ले सहेज
पुरवाई चले तेज
चलो खोल ही लें अब
वर्षों से मुँदे पेज
गुड़हल से हुए गाल
लहरों में रख-सँभाल
मछली को लिखा जाल
होश फिर ठिकाने हैं

## हीरा मणि चले गए

हीरामणि चले गए
खुद ही से लड़े मगर
कैंसर से छले गए

गीत की पताका थे
दर्द थे, ठहाका थे
अपने तो भाई थे
बच्चों के काका थे
हीरामणि चले गए
दलित थे इसी ख़ातिर
जीवन भर दले गए

मेहनत-मजदूरी थे
पर न जी हुजूरी थे
थे सूखी रोटी ही
कब हलुआ-पूरी थे
हीरामणि चले गए
दिया थे अँधेरे का
जब तक थे, जले गए

जब से बीमार हुए
स्वप्न तार-तार हुए
अपनी ही डोली के
आप ही कहार हुए
हीरामणि चले गए
बोझ हुए जाते थे
चले गए भले गए

# सूरज की धधकी आँखों में

देखो मेरा निष्क्रिय होना
हँसते-हँसते किसी बात पर
फफक-फफकर जी भर रोना

रखे हाथ पर हाथ बैठना
बीता कल रस्सी सा बटना
बस भविष्य की चिंता जीना
वर्तमान से छुपना-कटना
देखो मेरा निष्क्रिय होना
बिखरे से कागज-पत्तर को
मन ही मन में कहीं सँजोना

रुई-रुई साँसों का सेम्हल
देखे रक्त सना सा गुड़हल
सिरहाने पर रखी किताबें
पढ़ना नहीं, उलटना केवल
देखो मेरा निष्क्रिय होना
फूल सरीखे घाव कि इनको
छोड़ो सीना और पिरोना

है विश्वास कि यह निष्क्रियता
किसी क्रिया से जुड़ जाएगी
अपनी हर उम्मीद, सुबह की
पगडंडी पर मुड़ जाएगी
देखो मेरा निष्क्रिय होना
सूरज की धधकी आँखों में
बहुत हो चुका जुगनू बोना

# कभी फोन पर बतियाओ तो

कभी फोन पर बतियाओ तो
पूरा घर
चोंगे से बाहर आ जाता है

झिलमिल करें प्रिया की आँखें
सूनापन गा-गा उठता है
अपना ही वजूद अपने को
धीरे से समझा उठता है
कभी फ़ोन पर बतियाओ तो
कमरे में ही
जैसे बादल छा जाता है

पाटी पकड़ तोतली बोली
सुस्त हवा में घुल जाती है
कोई खिड़की आसमान के
आँगन में ही खुल जाती है
कभी फ़ोन पर बतियाओ तो
अलसायी आँखों,
सूरज अकुला जाता है

धूप-छाँव से, श्वेत-श्याम
रंगों में उजियारे लहराते
माँ के बाल कनपटी से ही
झूल-झूल नीचे आ जाते
कभी फ़ोन पर बतियाओ तो
जगते मन में
सपना सा गहरा जाता है

## बीत रीत जाने पर...

बीत-रीत जाने पर
दिन-तिथियाँ-घटनाएँ
और अधिक अर्थवान होते हैं

उठता है ज्वार भिगो देता है
कितना कुछ मन में बो देता है
बीत-रीत जाने पर
विन्ध्याचल साँसों के
हल्के कागज़ समान होते हैं

अनुभव के दरवाजे खुलते हैं
खुशबू के चेहरे भी धुलते हैं
बीत-रीत जाने पर
बहुतेरे असमंजस
खिलते हैं, फूल-पान होते हैं

नयी सुबह फिर करवट लेती है
हर देहरी ज्यों आहट देती है
बीत-रीत जाने पर
दिशाबोध झुँझलाते
करते हैं सावधान, होते हैं

दर्द-दवा यकसाँ हो जाते हैं
दुःख-सुख भी इक जाँ हो जाते हैं
बीत-रीत जाने पर
सन्नाटे मरुथल के
जगता सा बियाबान होते हैं

# भीग गया अख़बार

सुबह-सुबह पानी क्या बरसा
भीग गया अखबार
भीगी बिल्ली सा, दरवाज़े पड़ा रहा लाचार

खबर बड़ी सनसनी ख़ेज़ थी
अक्षर-अक्षर गली
ऐंठन फिर भी बची रह गयी
सारी रस्सी जली
राहजनी-चोरी-हत्याएँ
पड़ी बजट की मार
चश्मे से भी भाँप न पाया आँखों का बीमार

डाल-डाल पर अजब व्यवस्था
पात-पात तूफान
चूर-चूर कर देता मौसम
पर्वत सा अभिमान
आज तंत्र में सुरसा जैसा
दिखता है विस्तार
कल तक लेकिन चौंका देंगे इस्तीफे दो चार

उग्र हुए कुछ सभ्य मुखौटे
राख हुई दूकान
मरणासन्न दशा में पहुँचा
राहत का सामान
बादल शायद छँट जाएँगे
शुभ होगा शनिवार
तब पढ़ लेना संविधान में एकाएक सुधार

# बच्चे काम करें होटल में

बच्चे काम करें होटल में
टूटें मन, टूटती रकाबी
बच्चे कुम्हला जाते पल में

हुक्म बजाते, नाचे पड़ते
पड़ती डाँट, तमाचे पड़ते
ये तिनकों से खो जाते हैं
तेज हवाओं की हलचल में

वर्तमान को माँजा करते
आँखों कालिख आँजा करते
आने वाला कल खोता है
मालिक की भौंहों के बल में

रोएँ फूट-फूट सूने में
पैसे बिनें राख-जूने में
भूखे-नंगे आखिर इनको
कौन छुपाए भी आँचल में

कच्ची उम्र, मगर तीते हैं
अँजुरी बाँध प्यास पीते हैं
ये नन्हें पौधे देखो मत
इनको छाती के पीपल में

जब ये हक-अधिकार माँगते
अपना घर-संसार माँगते
दौड़-दौड़ पड़ती चीते सी
आग जुल्म वाले जंगल में

# शाम की नदी

सोयी, गुमसुम खोयी शाम की नदी
चिहरायी दिन भर के घाम की नदी
विजय अश्व सूरज का डुबो गया पानी
सूनी-सूनी नावें कल की अगवानी
उलझी शैवालों में नाम की नदी

ऊँघते किनारों पर सूँघे सन्नाटे
प्रेत हुई परछाँई भारीपन काटे
कितनी बेदाम हुई दाम की नदी

आटे की गोली के विषैले प्रलोभन
जाल में मछेरे के मछली का जीवन
थकी-थकी, तीरथ की धाम की नदी

पुल पर से गाड़ी का कोलाहल बोना
ऐसे में पता चला खुद का भी होना
'खास' तरह से चौंकी 'आम' की नदी

जल रही चिता ऊपर उठते हैं शोले
नमक की डली छूकर फूटते फफोले
अस्थि-विसर्जन, कितने काम की नदी

लहरों के संग हुई कुछ साजिश ऐसी
घाट की हवाएँ भी लगती हैं वहशी
मन की है नहीं, नहीं चाम की नदी

पसरी है दूर तलक धूसर गोधूली
हर आहट ने सूनी साँसें हैं छू ली
खून में नहायी है राम की नदी

# अनकहे संवाद

अनकहे संवाद उगते हैं ज़ेहन में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी
आँख में आँसू लिये माँ और बूढ़ी छत टपकती
रोशनी के नाम केवल एक बिजली सी लपकती
जा रही है सोच सुविधा की शरण में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

हम खड़े तो हैं मगर आधार खोते जा रहे हैं
इस क़दर है भीड़, घर-परिवार खोते जा रहे हैं
धुंध सी है भोर की पहली किरन में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

हुए संज्ञाशून्य सपने नींद भी उचटी हुई है
हर नयी तिथि, बिच्छुओं सी देह पर लिपटी हुई
टूटते हैं डंक कितने ही बदन में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

इस तरह से बँटा आँगन हो गया है देश जैसा
बस धुआँ है, जो खुला है द्रौपदी के केश जैसा
खुली आँखों देखना है फिर ग्रहण में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

कौन सी अफ़वाह है जो राशिफल से भी बड़ी है
कील जैसी आँख तो अख़बार के पन्नों जड़ी है
मिल रहे त्यौहार, चेहरों की शिकन में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

टूट जाए आइना फिर से कहीं ऐसा न हो
गुज़र जाए नदी फिर सिर से कहीं ऐसा न हो
सभ्यता का सच नशा भरता नयन में
स्वगत होकर रह न जाए बात अपनी

# पापा लौट रहे दफ्तर से

ख़ाली जेबों सी आँखों से बच्चे देख रहे
पापा लौट रहे दफ़्तर से ख़ाली-ख़ाली हाथ
हवा हो गये वो गुब्बारे
परियों वाले किस्से प्यारे
नन्हें हाथों के कंचे भी
जैसे हुए गगन के तारे
दरवाज़े पर बाँह पसारे बच्चे छेंक रहे
पापा लौट रहे दफ़्तर से ख़ाली-ख़ाली हाथ

चटुई वाले हाथ पसीजे
टूटे हुए खिलौने खीझे
गुम हैं बोल, झुनझुने गुमसुम
सजल हुई आँखें, मन भीजे
घर भर पर उड़ती-उड़ती सी नज़रें फेंक रहे
पापा लौट रहे दफ़्तर से ख़ाली-ख़ाली हाथ

टाफी की पन्नी बहलाती
बीती हुई गन्ध सहलाती
बस्तों में सहेजते सपने
बिना जिल्द की चिथड़ी थाती
पेट-पीठ की कहा-सुनी में घुटने टेक रहे
पापा लौट रहे दफ़्तर से ख़ाली-ख़ाली हाथ

अधनिचुड़े हैं बादल काले
चेहरे भरी झुर्रियों वाले
प्रश्न पूछते, नयी सुबह के
दिशाहीन सुकुमार उजाले
धूप जिंदगी की सन्ध्या की बाबा सेंक रहे
पापा लौट रहे दफ़्तर से ख़ाली-ख़ाली हाथ

# आँधियाँ सुस्ता रही हैं

कल न बीता, बीतकर जो है मुकुट या बोझ सर
कार्टूनों की कहें क्या
अनकहा भी बहुत कहते
वज्र होकर, वज्रपातों को
हमेशा शब्द सहते
शाम सी शामें न लगती बोध मिलता नहीं घर क
लोग अपनी जन्मपत्री
माँगते हैं आइनों से
बिंध गयी हर साँस जिनकी
बहुत गहरे तक ऋणों से
आँख में आकाश लेकिन हाँफता विश्वास पर का
जूझ खुद से
बहुत जाँगर-तोड़ से दिन थक गए हैं
भर रहे से घाव फिर से
चोट खाकर पक गए हैं
आँधियाँ सुस्ता रही हैं धूल का ओढ़े अँगरखा

दिख रहा परिपाटियों की
भौंह पर पड़ता हुआ बल
है दधीचों की कथा में
अस्थियों की गूँज केवल
कौन अंदाजा लगाये घुट रहे से मौन स्वर का
यज्ञ कोई हो रहा
अभिमंत्र ने सबको छुआ है
हर तरफ़ से उठ रहा
राज्याभिषेकों का धुआँ है
जग रही किरचें नदी में उग रहा है सत्य दरका

# ये वही दफ़्तर

ये वही दफ़्तर कि जिसकी
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते
कनपटी के बाल उजले हो गए

उम्र ने रोका नहीं, टोका नहीं
हम किसी सैलाब से चढ़ते रहे
जीविका का रास्ता लम्बा बहुत था
हम कठिन सी राह पर बढ़ते रहे
ये वही दफ़्तर कि जिसकी
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते
हम जले हर वक़्त, उपले हो गए

दाल रोटी में, गृहस्थी में खटे
हम बहुत खुलकर कभी खाँसे नहीं
कम नमक कर दिया, चीनी छोड़ दी
ये बताया भी कभी माँ से नहीं
ये वही दफ़्तर कि जिसकी
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते
आपसी संवाद पुपले हो गए

थीं थकानें और थी खुद से लड़ाई
हम कि चलते हुए सुस्ताए नहीं
एक 'टाइपराइटर' पर थी उसाँसे
अक्षरों के बीच उग पाए नहीं
ये वही दफ़्तर कि जिसकी
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते
बहुत सारे गीत पिछले हो गए

शिकन चेहरे पर बढ़ी, बढ़ती गयी
आत्मा तक सलवटें भी आ गयीं
जा रही थी बारज़े से दोपहर
शाम वाली आहटें भी आ गयीं
ये वही दफ़्तर कि जिसकी
सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते
आदमी थे हम कि पुतले हो गए